नये
धान
से
पहले

देवेन्द्र सत्यार्थी

नये धान से पहले

राम विलास शर्मा को

घूस नहीं,
मनुहार नहीं,
जी हाँ, उठाइए लाठी,
आलोचक जी !

सूची

आमुख

मुझे अच्छा नहीं लगता कि आमुख के बिना ही कहानी-संग्रह को बाज़ार की तरफ धकेल दिया जाय। जी हाँ, 'बाज़ार की तरफ़'। यह इसलिए कहता हूँ क्योंकि मुझे पूरी आशा है कि कहानियों के ग्राहक पहले से बहुत बढ़ गये हैं। पाठक की कल्पना मैं हमेशा ग्राहक के रूप में ही कर सकता हूँ, वैसे मांग कर पढ़नेवालों की ही संख्या आज भी खरीद कर पढ़नेवालों से कहीं अधिक है।

'चट्टान से पूछ लो', 'चाय का रंग' और 'सड़क नहीं, बन्दूक' के बाद हिन्दी में यह मेरा चौथा कहानी-संग्रह है। यह कोई मारके की बात नहीं। क्योंकि अभी तो मुझे इस सड़क पर बहुत दूर तक चलना है।

आधुनिक कहानी को देख कर कभी कोई पूछ बैठता है—क्यों साहब, यह कहानी है या चूँ-चूँ का मुरब्बा ? कोई कहता है—वाह श्रीमान जी, तो फिर निबन्ध और कहानी में कहाँ फर्क रह गया ? इस में प्लाट नहीं। इस में यह बात नहीं, इस में वह बात नहीं। आप हैं कि समझ बैठे हैं कि एक बहुत बड़ा तीर मार दिया।

अब इसका क्या उत्तर दिया जाय ? हाँ, तो यह कहने को अवश्य जी चाहता है कि चूँ-चूँ का मुरब्बा भी एक सफल कहानी के लिए सहायक सिद्ध

हो सकता है। शर्त यही है कि विचार-प्रतीकों और वातावरण की सुइयों में एक विशेष सम्मिश्रण और संतुलन की कला दिखाई जा सके। प्लाट केवल घटना को ले कर चलनेवाली चीज़ का ही नाम नहीं। प्लाट तो भावना का भी हो सकता है—वातावरण के रंगों के उतार-चढ़ाव को भी प्लाट का स्थानापन्न होने का अधिकार मिल सकता है।

कुछ लोग कह सकते हैं—यह कैसा आमुख है? और फिर इस आमुख की ज़रूरत ही क्या थी? कहना ही था तो इस संग्रह की कहानियों के बारे में ही कुछ कहा होता।

सोचता हूँ कि इन कहानियों के बारे में क्या कहूँ। एक बात तो ज़ोर दे कर कहना चाहता हूँ। वह यह कि जब भी मैं कोई कहानी लिखता हूँ, मुझे यों लगता है कि एक बालक का जन्म हो गया। अपनी रचना को मैं सदा एक प्रकार से अलगाव के साथ देखने की कोशिश करता हूँ, यों देख सकना सहज नहीं। कैसे कोई अपनी लिखी हुई वस्तु को दूसरे की लिखी हुई समझ कर परख सकता है? अपना अनुभव तो अपना ही रहता है। यह बात कि मैं अपने ही अनुभव को और अपने ही ढंग से प्रस्तुत करने का यत्न करता हूँ, मुझे मजबूर कर देती है कि मैं अपनी लिखी हुई चीज़ को हर अवस्था में—इसकी समूची सफलता और असफलता के साथ अपनी ही रचना समझूँ। हाँ, तो बहुत दिनों तक मैं ताज़ा लिखी कहानी को बालक के समान उछलते-कूदते देखना चाहता हूँ। यही बात इस संग्रह की कहानियों के लिए भी सत्य है।

बालक के सम्बन्ध में जो विचार एक स्थल पर रोम्यां रोलां ने व्यक्त किए हैं, वही मैं अपनी किसी नवजात कहानी के लिए कह सकता हूँ—'इस छोटे-से प्राणी में शक्ति, आनन्द, गर्व का कितना बड़ा भण्डार है। इसमें कितनी अधिक शक्ति है। इसका शरीर और मस्तिष्क सदा गतिमय रहते हैं—वे निरन्तर इधर-उधर चक्कर काटते फिरते हैं। छोटे-से पतंगे की तरह वह दिन-रात चिनगारियों पर नाचता रहता है। उसके उत्साह में थकावट नहीं—वह हर चीज़ में अपनी खुराक पाता है। एक सुन्दर स्वप्न,

एक उबलता स्रोत, आशा का एक अक्षय कोष, एक हँसी, एक गीत, एक न टूटनेवाला नशा। जीवन उसे पकड़ नहीं पाता—वह उसे चकमा दे देता है। वह असीम में तैरता रहता है। वह कितना सुश है। वह सुश रहने के लिए ही उत्पन्न किया गया है। उसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो आनन्द पर विश्वास न करती हो, जो आनन्द को अपनी पूरी शक्ति और कामना से पकड़ कर जकड़ न लेती हो।'

नवजात कहानी सचमुच मुझे मजबूर करती है कि मैं उसे एक प्राणवान वस्तु के रूप में देखूं। इसीलिए एक कहानी लिखने के फ़ौरन बाद में दूसरी कहानी लिखने के लिए नहीं बैठ सकता। यों लगता है कि एक कहानी को जन्म देकर बहुत-सी शक्ति खो बैठा हूं। जब तक जननी के समान मैं फिर से शक्ति प्राप्त न कर लूं, नई कहानी लिखने की बात मैं सोच ही नहीं सकता।

अभी उस दिन दिल्ली के 'शनिवार समाज' में मुझे इस संग्रह की हस्ताक्षर कहानी—'नये धान से पहले' पढ़ने का अवसर मिला। कहानी पढ़ने से पहले मैंने यह बताने की कुछ ज़रूरत न समझी कि मैंने इसे सन् १९४४ में लिखा था और वह भी उर्दू में। न मैंने यह बताया कि पहले यह लाहौर से प्रकाशित होने वाले 'अदबे लतीफ़' के सन् १९४५ के वार्षिकांक में प्रकाशित हुई थी और न मैंने यही बताया कि बंगाल के अकाल के पांच वर्ष के पश्चात् यह कहानी बम्बई के 'नया अदब' के विशेषांक में भी सम्मिलित की गई थी, जिसमें सन् १८४७ से १९४८ तक उर्दू साहित्य में प्रदर्शित राष्ट्रीय चेतना का इतिहास प्रस्तुत करने का यत्न किया गया था।

खैर, मैंने कहानी पढ़ दी। अब इस पर आलोचना शुरू हुई। किसी ने कहा—"यह बेहद लम्बी है—उकता देनेवाली हद तक लम्बी।"

मैं चुप रहा।

फिर किसी ने कहा—"आखिर इसे वहीं क्यों न खत्म कर दिया गया, जहाँ राखाल लंगर के सामने माँ के साथ दाल-भात मिलने की आशा में खड़ा दिखाया गया है।"

मैं चुप रहा।

एक और श्रोता ने उछल कर कहा—"आजकल सरकार ने संस्कृति का जो नारा बुलन्द किया है, यह कहानी भी उसी की परिचायक नज़र आती है। भले ही लेखक की अपनी शैली है, पर हम उसे नये युग पर व्यंग्य कसने की कुचेष्टा में संलग्न देखते हैं। सचमुच यह बड़ी अजीब बात मालूम होती है कि नया युग मरे हुए बच्चे के रूप में पैदा होता है।"

मैं चुप रहा।

एक साहब बोले—"यही तो सब से बड़ा एतराज़ है। लेखक ने नये युग में विश्वास बढ़ाने की बजाय नये युग को मरे हुए बालक का प्रतीक प्रदान किया है, जो सिरे से गलत है और प्रतिक्रियावादी भी। ख्वाह-म-ख्वाह राधा कृष्ण की बात जयश्री के मन में चक्कर काटती है। आखिर यह क्यों? लेखक ने यों ही एक तिलिस्म-सा खड़ा करने की चेष्टा की है, पर कहानी का कोई उद्देश्य नज़र नहीं आता। यह कहानी कोई दिशा नहीं बताती। यह तो बल्कि एक भूलभुलैयाँ में डालनेवाली चीज़ है। लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिए था। उसे जन-आन्दोलन को समझ कर ही लेखनी चलानी चाहिए थी। बस लेखक तो अपनी लेखनी को तैरने के लिए छोड़ देता है और अटकलपच्चू रूप से उसकी लेखनी जिधर भी चल पड़ती है, ऊटपटांग प्रसंगों का तानाबाना-सा बुनती हुई कुछ न कुछ दिखाने की बे सिर पैर की कोशिश करती है। राखाल मर जाता है। इसी पर बस नहीं, जयश्री के मरा हुआ बच्चा पैदा होता है। फिर जयश्री भी मर जाती है। मैं पूछता हूँ, क्या राखाल, नवजात शिशु और जयश्री तीनों को मार डालना ज़रूरी था?"

मैं चुप रहा।

एक आलोचक महोदय ने बीच-बचाव करते हुए कहा—"कहानी लम्बी होते हुए भी एक धुरी पर अवश्य घूमती है, इस से तो किसी को इन्कार नहीं हो सकता। लेखक की अपनी विशिष्ट शैली है। यह भी स्पष्ट है कि लेखक ने बड़ी सचाई से बंगाल के अकाल का एक पृष्ठ हमारे सामने रख दिया है। अब हम और क्या चाहते हैं? यह और बात है कि यह पृष्ठ खूब लम्बा चौड़ा है। राधा कृष्ण के सम्बन्ध में जयश्री अवश्य सोच सकती है और जिस सांस्कृतिक स्तर पर वह खड़ी है उस के प्रतीकों से वह कैसे एकदम छुट्टी पा सकती है?"

अब मुझ से भी कुछ कहने का अनुरोध शुरू हुआ। मैंने बताया—"यह कहानी सन् १९४४ में लिखी गई थी और किसी सांस्कृतिक नारे से इसे ख्वाह-म-ख्वाह जोड़ने की कोशिश न की जाय।"

जिसने यह आपत्ति की थी उसने फौरन कहा—"मैं अपनी बात वापस ले रहा हूँ।"

मैंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—"मैंने जयश्री को जिस रूप में देखा उसी रूप में मैंने उसे प्रस्तुत कर दिया है। मरा हुआ बालक उत्पन्न होता है नये धान से पहले—यह एक व्यंग्य है ज़रूर। पर साहब, इस से तो लेखक की यह उत्कट इच्छा उभरती है कि काश नया युग जल्द आ जाय, नया धान शीघ्र उगे, जिससे शत शत जयश्रियां मरे हुए बालकों को जन्म दे कर स्वयं भी अकाल के मुंह का निवाला न बनती चली जायँ। मैं यह मानता हूँ कि इस कहानी की सफलता-असफलता का निर्णय इस गोष्ठी में नहीं किया जा सकता। इसका फैसला तो पाठकों और आलोचकों के विस्तृत क्षेत्र में ही होगा।"

'शनिवार समाज' में वैसे हर किस्म की चीज़ पढ़ी जा सकती है। चीज़ किसी किस्म की भी क्यों न हो, आलोचना अवश्य गरमागरम होनी चाहिए—यह 'शनिवार समाज' की परम्परा है। इसके लिये मैं कहानी पढ़ने से पहले ही तैयार था।

ख़ैर, उस दिन किसी तरह 'शनिवार समाज' की वह गोष्ठी खत्म हुई।

उससे अगली गोष्ठी में एक महिला ने मेरे पास की कुरसी पर बैठते हुए धीरे से मेरे कान में कहा—"पिछली मीटिंग में आपकी कहानी खूब रही। एतराज़ करनेवालों की तो आदत है कि कुछ कहना चाहिए। हाँ, एक बात है कि कहानी बहुत ही धीरे-धीरे चलती है। वैसे तो आपकी अनेक रचनाएँ धीरे-धीरे चलती हैं। इस दृष्टि से 'धीरे बहो, गंगा!' का नाम बहुत सार्थक है।"

मैंने कहा—"जी, 'धीरे बहो, गंगा!' की बात छोड़िये। वह कहानी नहीं, निबन्ध है। आपको मालूम होना चाहिए कि यदि मैं अकाल की मारी हुई जयश्री का चित्रण करने के लिए कहानी को दुलकी चाल से दौड़ाना शुरू कर देता तो कहानी अपनी चरमसीमा तक पहुँचने से पहले ही पतंग की डोर के समान कट जाती।"

इस संग्रह की दो और कहानियाँ भी बंगाल के अकाल से सम्बन्धित हैं—'रंग, तूलिका और अकाल' और 'सोना गाची'।

सन् १९४३ का बंगाल का अकाल भारतीय इतिहास की एक बहुत बड़ी दुखान्त घटना थी। सोमनाथ लाहड़ी की कहानी '१९४३', कृष्णचन्द की कहानी 'अन्नदाता' और ख्वाजा अहमद अब्बास की कहानी 'एक पायली चावल' इसी अकाल की कहानियाँ हैं।

बंगाल के अकाल से सम्बन्धित मेरी दो कहानियां—'कब्रों के बीचोंबीच' और 'रांगा माटी' इससे पहले 'चट्टान से पूछ लो' में सम्मिलित हो चुकी हैं। 'चाय का रंग' में भी इसी अकाल से सम्बन्धित मेरी दो और कहानियाँ उपलब्ध हैं—'दोराहा' और 'लावारिस'।

'क्षमा करो, लोहे के लोगो' मेरे आरम्भिक जीवन का एक पृष्ट है, जब मैं शुरू-शुरू में घर से भाग निकला था।

'अब पुल सामने था' में यह दिखाने का यत्न किया गया है कि सैनिकों की असल भावनाओं में जीवन के रंग ही अधिक उभरते हैं।

'अगला पड़ाव' और 'जुगनू ही जुगनू' में सौंदर्य के दीवाने मिलेंगे, जिन्हें संगीत ने छू लिया है।

'सतलज फिर बिफरा' में एक परम्परा सतलज की तूफ़ानी लहरों के साथ बह जाती है, हमेशा के लिए।

'अर्चना के पापा जी' का नायक मध्यवर्ग का एक शरणार्थी है, जो जड़ से उखड़ गया है।

'एक भिक्षु की कहानी' का नायक बरमा से हिन्दुस्तान आता है—वह अनेक पीढ़ियों की शान्तिप्रियता का भार ढोते हुए यह लम्बी यात्रा करता है और शान्ति के प्रतीक बुद्ध की मूर्ति के सम्मुख कहानी चरमसीमा को पहुँचती है।

ये बारह की बारह कहानियाँ कैसी हैं, इसका फैसला मैं पाठकों और आलोचकों पर छोड़ता हूँ।

१००, बेयर्ड रोड, नई दिल्ली
१५ अगस्त, १९५०

देवेन्द्र सत्यार्थी

नये धान से पहले

यह कंगलों की कतार थी। हू-ब-हू कमान की तरह। एक साथ कहीं सात आदमी खड़े थे तो कहीं दस, स्त्रियां और बच्चे और पुरुष, युवक और वृद्ध। सभी एक तराजू में तुल रहे थे। सभी भूखे थे। नन्हें बच्चे सूखी छातियों को चिचोड़ रहे थे। बड़ी आयु के बच्चे कतार से निकल कर लंगर के दरवाजे पर पहुँचने के लिए ज़िद कर रहे थे। लंगर वालों ने लाख यत्न किया कि स्त्रियों और पुरुषों की अलग-अलग कतारें बन जायँ, पर यह भारी भरकम कमान अपने स्थान पर डटी रही।

कतार में खड़े-खड़े जयश्री के मन में एक शब्द गूंज रहा—'सतयुग!' न जाने सतयुग कब आयगा। कौन जाने आयगा भी या नहीं। सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। और कलियुग के बाद फिर सतयुग आता है। सतयुग कितने वर्ष का होता है, कुछ मालूम नहीं। कलियुग की आयु भी तो कोई नहीं जानता। हां, याद है—त्रेता बारह लाख छयानवे हज़ार वर्ष का होता है और द्वापर आठ लाख चौंसठ हज़ार वर्ष का। युधिष्ठिर

शास्त्र और पुराण पढ़ता है। उसने ठीक ही कहा होगा। कलियुग की आयु शास्त्र भी नहीं जानते। न जाने कलियुग का अन्त भी होगा या नहीं। शायद कलियुग त्रेता से भी बड़ा हो। जब से होश संभाला है, यही सुनती आई हूँ कि पाप की नैया भर चुकी है और अब यह डूबी कि डूबी। उसके मन में अनगिनत गिद्ध मँडराने लगे। ये सब गिद्ध उस पर झपटने की कोशिश में थे। उसने सोचा कि सतयुग अब आय न आय, ये गिद्ध तो हम कंगलों को नोच-नोच कर खा जायँगे। हम बच नहीं सकते। सब सहमे जा रहे हैं। जैसे सब को गिद्ध नज़र आ रहे हों। राखाल उसका हाथ खींचते हुए 'मां, भूख ! मां, भूख' की रट लगा रहा था। कोई और समय होता तो वह उसका हाथ छुड़ा कर भाग जाता। पर अब उसके शरीर में इतनी शक्ति न थी।

जयश्री ने राखाल की गर्दन थपथपाते हुए सोचा—आठ साल से मैं इसे पालती आई हूं। अरे, अरे ! इसका पेट तो कुप्पा हो रहा है। किस तरह हड्डियां निकल आई हैं। आज इसका पिता जीवित होता तो वह कहीं न कहीं मज़दूरी ढूंढ ही लेता। लंगर के सामने घंटों खड़े रहो, फिर कहीं थोड़ा दाल-भात प्राप्त होता है। आखिर हम कैसे बच सकते हैं? उसके मन में भूखे गिद्ध बराबर मँडराते रहे। ये गिद्ध राखाल पर भी झपटना चाहते थे।

राखाल ने मां का हाथ खींचते हुए पूछा—"हमें दाल-भात कब मिलेगा? मां ! गरम-गरम दाल-भात?"

"हमारी बारी तो आ ले राखाल," जयश्री ने उसे चूमने का यत्न करते हुए कहा।

न जाने हमारी बारी कब आयगी, न जाने हमारी बारी आने से पहले ही सब दाल-भात खत्म हो जाएगा। शायद हम यहां खड़े-खड़े गिर पड़ेंगे और अनगिनत गिद्ध हमें नोच-

नोच कर खा जायेंगे। भूख के मारे पेट श्मशान की तरह जल रहा है। हाय राम! हमारी भूख का अब कभी अन्त नहीं होगा। हम भूखे हैं और गिद्ध भी तो भूखे हैं। कोई कहां तक धैर्य रखेगा? न जाने अभी और कितनी देर होगी? अधिक नहीं तो थोड़ा ही सही। शीघ्र नहीं तो देर से ही सही। बस दाल-भात मिले अवश्य। ये लंगर वाले भी कितने दयावान हैं। वे हमें मृत्यु के मुख से बचाने का यत्न कर रहे हैं।

...............जयश्री, ओ जयश्री!—गांव छोड़ते हुए उसके पति ने कहा था पहले मेरी मृत्यु होगी। जब तक मैं जीवित हूँ, यमदूत तुम्हारी ओर देख भी नहीं सकते.......यह, मत कहो पतिदेव! पहले मैं मरूंगी। तुम बच जाओ और मेरा राखाल बच जाय.......अरे, अरे! जयश्री, तुम्हें चिन्ता काहे की है? राखाल का बाल भी बांका न होगा।

उसने सोचा कि इस कलियुग में यह एक सतयुगी बात हुई कि उसका पति वचन निभा गया। कंगले का जीवन किसे पसन्द होगा? और यह जीवन भी कोई जीवन है? यह तो बोझ है बोझ, भारी-भरकम बोझ। अरे, कोई इसे कब तक ढोता रहेगा?

...............जयश्री, ओ जयश्री! कुल की बेल सदा ही हरी, जयश्री! अरे, अरे! तुम तो गर्भवती हो, जयश्री! सात महीने तो हो भी गये, दो महीने रहते हैं। बेटा जन्मेगा तो सब कष्ट दूर हो जायँगे और अगर बेटी आ गई? उंह! बेटी नहीं चाहिए। बेटा चाहिए, बेटा। बेटा, जो धरती में हल चलायगा, बेटा जो बरस के बरस नया धान उगायगा........

यह भयानक अकाल और मैं गर्भवती हूँ। जयश्री ने झुंझला कर राखाल का हाथ झटक दिया। जैसे सब क्रोध उसी पर उंडेल देना चाहती हो। पर अगले ही पल वह पहले ही की

ह उसकी गर्दन थपथपाने लगी—राखाल—चंदा बेटा—हां,
ाँ, कुल की बेल सदा ही हरी।

"सुख में दान दिया जाता है, दुःख में दान का फल मिलता है", पीछे से एक बुड्ढा खाँसता हुआ कह रहा था, "हम दान लेने पर मजबूर हैं।"

"ऐसा अकाल तो न देखा था न सुना था," एक बुढ़िया कह उठी, "पहले तो अकाल उसी समय पड़ता था जब वर्षा न होती थी और धान की फसल मारी जाती। पर अब के इतना धान हुआ, इतना धान हुआ, फिर भी यह भयानक अकाल—हे भगवान्, यह अकाल कब खत्म होगा ?"

"हम फिर अपने गांव को जायँगे, दीदी !" एक लड़की ने शह दी, "जिन को मरना था वे कभी के मर गये। अब ये लंगर वाले हमें मरने न देंगे।"

"तुम जीना चाहो तो शौक से जियो, बेटी !" बुढ़िया बोली, "मुझे तो भगवान अपने पास बुला ले तो लाख-लाख धन्यवाद करूँ।"

जयश्री बड़े ध्यान से ये बातें सुनती रही। दाईं टांग का बोझ बाईं टांग पर डालते हुए उसने राखाल का मुख चूम लिया, बोली—"तेरा बाप तो हमें छोड़ गया, राखाल ! अब तू ही उसकी निशानी है, राजा बेटा, चँदा बेटा !"

"स्वर्ग में तो अकाल न पड़ता होगा," बगल से वह लड़की कह रही थी, "भूख की महामारी भोगते हुए हमें कितना कष्ट होता है, यह हमारे देवता क्या जानें ?"

"सुखेर लागिया ए घर बांधीनूं, अनले पोड़िया गैलो !" वह बुढ़िया गुनगुना रही थी, "चंडीदास बाबा सच कह गये—सुख के लिए यह घर बनाया था, हाय यह आग में जल गया !"

और जयश्री को झट अपनी झोंपड़ी का ध्यान आया। अभ

तो वह उसी तरह खड़ी होगी। उसके मन में शंख की आवाज़ गूंज उठी। जैसे देवताओं को जगाया जा रहा हो। देवता तो स्वर्ग में रहते हैं, पर उनकी मूर्तियां मन्दिरों में स्थापित की गई हैं। हर रोज़ रात को उन्हें सुलाया जाता है और सवेरे जगाया जाता है। स्नान के पश्चात् तरह-तरह के भोजन उनके सामने रखे जाते हैं। ज़मींदार बाबू के राजमहल से उनके लिए अलग पकवान पक कर आते हैं। शायद इसीलिए वे ज़मींदार बाबू को कुछ नहीं कहते चाहे ज़मींदार बाबू निर्धन प्रजा पर कितना ही अत्याचार क्यों न करता रहे। महाजन भी देवताओं को खुश रखता है और हमारी रही-सही ज़मीनें हड़प करते हुए ज़मींदार बनता चला जाता है। देवता चुप हैं। लुटे हुए लोग उनके सामने हाथ बाँधे खड़े रहें, पत्थर और धातु के देवता उनका न्याय नहीं कर पाते।

पीछे से धक्के शुरू हो गये थे। जयश्री ने झट राखाल को संभाल लिया। पीछे मुड़ कर देखना कठिन था। इन लोगों को शर्म भी तो नहीं आती। आज उन्हें दाल-भात न दिया जाय तो कल से ये आदमियों की तरह खड़े हुआ करेंगे। पर झट उसके मस्तिष्क के दूसरे भाग से आवाज़ आई—दाल-भात क्यों न दिया जाय ? यह तो बहुत कड़ी सज़ा होगी। ये भी क्या करें ? पीछे से ये भी तो धक्के खा रहे हैं।

कटहल के पेड़ न होते तो सूर्य उसके अर्धनग्न शरीर पर सुइयां चुभोता चला जाता। छाया रहने पर भी वह पसीना-पसीना हुई जाती थी। राखाल ने उसका हाथ खींचा। गर्दन घुमा कर वह माँ की आँखों में झाँकने लगा। अरे, अरे! अरे राखाल! तू भी पसीना-पसीना हो रहा है। मेरा राजा बेटा—चँदा बेटा, तुझे बहुत भूख लगी होगी। अरे आज तो मैं तुझे अपने हिस्से में से हा थोड़ा-सा दाल-भात दे दूँगी......फिर ज़रा झुक कर उसने

राखाल के पेट पर हाथ फेरते हुए कहा—"हाय, यह तेरे पेट को क्या हो गया, राखाल ? हाय राम, यह कैसा रोग है ?"..... अगले ही क्षण उसने हाथ फेर कर राखाल के माथे से पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदें पोंछते हुए उसका मुख चूम लिया और कहा—"राजा बेटा, राजा बेटा। अरे, अरे ! आज तो गरम-गरम दाल-भात खायगा मेरा राजा बेटा।"

वह जोर-जोर-से सिर खुजा रही थी। मुई जुएँ, लहू पीने वाली जुएँ। न जाने इतनी जुएँ कहाँ से पैदा होती रहती हैं ! न जाने ये जुएँ कभी मरेंगी भी या नहीं ! हायराम ! ये जुएँ मेरा सब लहू पी जायँगी, पीती चली जायँगी।

"न जाने अब गांव की क्या दशा होगी ?" पीछे से वह बुड्ढा कह रहा था, "मुझे गाँव छोड़े ढाई महीने हो गये।"

"अब तो वहाँ भूत बसते होंगे भूत," बुढ़िया बोली, "अब वहाँ इन्सानों का क्या काम ?"

"चावल का दाना-दाना गाँव से निकाल कर ले गये तो गाँव वाले गाँव छोड़ने पर मजबूर हुए," वह लड़की कह उठी, "अब कोई अपने गाँव को लौट कर नहीं जायगा।"

"कहाँ चला गया चावल ?" जयश्री ने झुंझला कर कहा, "कौन ले गया चावल ? तुझसे यह कैसे देखा गया भगवान् ?"

कतार आगे को सरक रही थी। अभी लंगर का दरवाज़ा दूर था। इस तरह तो बहुत समय बीत जायगा। पाव घंटा, आधा घंटा, एक घंटा। न जाने कितने आध घंटे। जयश्री की उँगुलियाँ उसके बालों में धँस गईं। पीछे से उलझा-उलझा शोर सुनाई देने लगा। जैसे लोग लंगर के दरवाज़े पर धावा बोलने का षड्यन्त्र कर रहे हों। यह शोर कतार के अगले हिस्से की ओर सरकने लगा। "हाय दाल, हाय भात !" किसी ने नारा लगाया और फिर पूरी कतार पंखे की तरह डोलती दिखाई दी।

यह इन्तज़ार उसे एक लम्बा नीरस सपना प्रतीत हुआ। यह जीवन एक बोझ है। इसे कब तक उठाया जाय? उसने घूम कर बूढ़े की ओर देखा। वह शायद इसी क्षण की प्रतीक्षा में खड़ा था कि यह अधेड़ स्त्री गर्दन घुमा कर उसकी ओर देखे। वह जयश्री को घूर रहा था जैसे कह रहा हो—बावरी, हम सब मुर्दे हैं, मुर्दे। कब्रों में उठ कर हम यहाँ खड़े हो गये हैं। चलो फिर से कब्रों में जा सोयें, बावरी!

उसे बाढ़ का ध्यान आया। यह बाढ़ तो हर साल आती है। भगवान् का श्राप! कितने गाँव बह गये। कितने पशु डूब गये। हाय राम आदमी कितने कष्ट सहता है। बाढ़ के बाद धरती में दरारें ही दरारें नजर आईं। पोखरों में पीने का पानी गंदला और कसैला हो गया। हे भगवान्! यह बाढ़ बन्द नहीं हो सकती—यह भूख की बाढ़? हाय हम ही धान उगायें और हम ही भूख से मरें। यह कहाँ का न्याय है?

सिर खुजाने की बजाय अब वह नथुनों के बाल उखाड़ रही थी। राखाल चाहता था कि बन्दर की तरह उछले, और अभी लंगर के दरवाजे पर पहुँच जाय। अपने-अपने हिस्से का दाल-भात लेकर हर कोई परे नदी की ओर चला जाता है। वे अभी इसी तरह करेंगे उसने सोचा कि वह माँ के हिस्से में से थोड़ा दाल-भात जरूर ले लेगा। आज उसे इतनी भूख लग रही थी, आज तो वह अपने हिस्से में से माँ को थोड़ा भात भी न देगा।

पसीने की दुर्गन्ध निरन्तर बढ़ती चली गई। जयश्री के मन में बराबर गाँव का विचार चक्कर काटता रहा। अब किसे पता हो सकता है कि वह लौटकर वहाँ जायगी या नहीं। पति नहीं, राखाल तो है। राखाल परिश्रम करेगा और अपनी जमीन छुड़ा लेगा। रास्ते के भिखारियों की तरह वह कभी अपने बच्चे के साथ मारी-मारी न फिरेगी। वह जरूर अपने गाँव को लौटेगी।

"उमर-भर का पसीना जैसे आज ही टपक पड़ेगा", लड़की कह रही थी।

बुढ़िया बोली—"क्या धनवान, क्या निर्धन, पसीना तो सब के शरीर से टपकता है।"

पीछे से बूढ़ा कह उठा—"मैं प्यासा हूँ। मेरे भीतर पानी की एक बूंद भी न होगी। फिर न जाने इतना पसीना कहाँ से निकल रहा है?"

और फिर बुड्ढे ने जयश्री को टहोका दिया। जैसे पूछ रहा हो—बावरी, तू क्यों चुप खड़ी है। पर जयश्री ने गर्दन घुमा कर बुड्ढे की ओर या लड़की की ओर देखने की आवश्यकता न समझी।

सामने से एक युवक ने गर्दन घुमा कर देखा। जैसे कह रहा हो—हूं तो मैं तेरा कन्हैया, राधे! पर मैं सचमच भूख से मरा जा रहा हूँ और मैं जानता हूँ राधे तू भी भूखी है। जयश्री ने कन्हैया और राधा को ध्यान से देखा। कभी तो वह भी अपने कन्हैया की राधा थी। फिर उसे अपने पति के अन्तिम दिनों का ध्यान आया। उसे भीख मांगना पसन्द न था और उसने प्राण छोड़ दिये। उस दिन वह कैसे बिलख-बिलख कर रो रही थी। पायल बेच कर उसने दाह-संस्कार के लिए लकड़ी खरीदी थी। हाय राम, आज उस चिता की राख को हवा उड़ाये लिये फिरती होगी! न जाने कहाँ-कहाँ?

उसका मन फिर गांव की ओर घूम गया। अभी कल तक गांव में उसका सम्मान बना हुआ था। कहीं न कहीं से यात्रा वाले आ निकलते। कन्हैया और राधा का खेल खेला जाता। चंडीदास के पद गाये जाते। जीवन को पंख लग जाते। हर कोई गाने लगता। वह प्रतिवर्ष यात्रा वालों के लिए नया धान निकाला करती। उसे मालूम था कि वे पैसे लेकर खुश रहते हैं। वह

महाजन की दूकान पर चली जाती और सस्ते दामों पर धान बेचकर नक़द पैसे ले आती। रात को मशालों के प्रकाश में जब यात्रा वाले थाली में आरती का चौमुखा दीपक रख कर सारी सभा में घुमाते तो वह झट उसमें पैसे डाल देती। पिछली बार उनके लिये तीन सौ जमा हो गये थे। पूरे पचास तो अकेले ज़मींदार बाबू ने दिये थे, पूरे पचास। ऊँह ! ये रुपये भी तो हमारे ही थे। अरे। काम करें हम और मौज उड़ायें ज़मींदार बाबू। धन्य है तेरा न्याय, हे भगवान्, धन्य है तेरी लीला ! उसे याद था कि उसने केवल एक रुपया दिया था। एक रुपया। कन्हैया नाचे, राधा नाचे। इसका तो कोई मोल नहीं दिया जा सकता। यात्रा वालों को जो कुछ भी दिया जाय थोड़ा है। अरे, यही तो उनकी खेती है। मृदंग कहता है—कन्हैया की जय, राधा की जय। मँजीरा कहता है—कन्हैया सांवरे और राधा गोरी। राधा गाती है—मैं ब्रज की गोपी मुरली वाले के संग रास रचाऊँ, अरे कहाँ ब्रज और कहाँ बंगला देश। सारा देश कन्हैया साँवरे और राधा गोरी का ही तो है।

यह भयानक अकाल। अरे, अरे, इसे राधा गोरी और कन्हैया साँवरे भी न रोक सके। यह सोचते हुए जयश्री ने लंगर के द्वार की ओर एक लम्बी दृष्टि दौड़ाई। उसने बाहें फैलाने का यत्न किया। एक बार फिर वह गाँव की स्मृति में खो गई। उसे याद था कि कैसे चावल मँहगा होता गया और किस तरह लोग अंधे होकर चावल बेचते चले गये। महाजन खुश थे। वे किसानों को समझा रहे थे कि अब महँगे भाव पर चावल बेच डालो। फिर सस्ते दामों चावल खरीद लेना। समय-समय का जादू है। यह अवसर नित्य तो नहीं आता। और हम मूर्खों ने इतना भी नहीं सोचा कि सारी फसल तक खाने योग्य ही सही चावल घर में तो रख लें। चावल निकलता गया। घर में खाने

ोग्य चावल भी जा रहा था। आख़िर वह भयानक घड़ी भी गई कि चावल का दाना सोने के भाव बिकने लगा कलियुग ं। अरे, अरे, अरे! यह कैसा कलियुग है?

पीछे से बुड्ढे ने जयश्री को टहोका दिया। जयश्री मुड़-मुड़ कर उसकी ओर देखने लगी। जैसे कह रही हो—हां बाबा! हां बाबा! दुनिया मुसाफिरखाना है। आज यहां, कल वहां, अब हम भिखारी रहेंगे—उमर भर, रास्ते के भिखारी। नित-नित तो यह दाल-भात मिलने से रहा। उसे याद आया कि गाँव छोड़ने से कुछ ही दिन पहले उसने हाट-बाज़ार में एक बुड्ढे को राधा और कन्हैया की मूर्तियां बेचते देखा था। अरे, अरे! वह बुड्ढा तो इस बुड्ढे से मिलता-जुलता था। वह कितना मजबूर था। जिन मूर्तियों को उसके पुरखा पूजते आये थे, उन्हें वह बहुत सस्ते दामों बेच रहा था। उसके जी में तो आया कि वह पूछ ले, पर वह चुप खड़ी रही।

फिर उसके सामने तारापद की शकल घूम गई। उसने उन दलालों की बुरी गत बनाई थी जो नगर से स्त्रियों की दलाली करने आये थे। हरामी, सूअर, राक्षस चले आये गाँव में। अरे गांव की कन्यायें भी किसी की बेटियां हैं, किसी की बहनें। हरामी, सूअर राक्षस—ये गालियां उसके मन में गूंज उठीं......हाय री दुनिया! उसी तारापद ने गाँव की सब से सुन्दर लड़की को पकड़ कर बेच डाला। न जाने वह किधर निकल गया। हरामी, सूअर, राक्षस! गाँव छोड़ने से पहले वह एक, न दो न तीन, पूरी सात कन्याओं को बेच चुका था। उसे तो खूब भात मिलता होगा। रसगुल्ले, सन्देश और न जाने क्या-क्या मिठाई। उसे हमारी तरह लंगर के सामने घंटों प्रतीक्षा न करती पड़ती होगी। अब तक तो वह बड़ा दलाल बन चुका होगा। सबसे बड़ा दलाल।

अब लंगर का दरवाजा समीप था। राखाल खुश नज़र आता

था। अब मां का हाथ खींच कर लंगर के दरवाज़े तक दौड़ लगाने की कुछ आवश्यकता न थी। गरम-गरम दाल, गरम-गरम भात। अपने हिस्से का दाल-भात वह स्वयं खायगा। मां लाख कहे कि थोड़ा-सा मुझे दे दो, राखाल ? भगवान ने बड़ा पेट लगाया है। और मुझे तुमसे ज्यादा भूख लगती है। वह एक नहीं सुनेगा।

............जयश्री, ओ जयश्री! सब ज़मीन बन्धक रख दी और एक बोरी चावल मिला। एक बोरी चावल। अरे जानती है आजकल एक बोरी चावल का क्या मोल है? सवा दो सौ, बल्कि ढाई सौ। अरे अब तो कोई तीन सौ भी मांग ले तो कोई पूछने वाला नहीं......पतिदेव, सात दिन से हम घुइंयां के पत्ते खा रहे हैं, और ये पत्ते भी कब तक मिलेंगे?......अरे सुन तो जयश्री, आध बोरी चावल के लिए एक बीघा ज़मीन बेच कर आ रहा हूँ.........पाप महापाप, यह तो तुमने राखाल का भाग्य बेच डाला। हाय राम! अब राखाल यह ज़मीन कभी न छुड़ा सकेगा......अरे मैं क्या करता......? महाजन तो सारी ज़मीन की रजिस्टरी कराने के बदले दो बोरी चावल देने को तैयार था। मैंने सोचा राखाल का सारा भाग्य क्यों बेच डालूं। अरे हमारे जीवन में तो कलियुग का अन्त होने से रहा, पतिदेव! यह अकाल हमें खा जायेगा। फिर सतयुग आये न आये। चलो अब इस गाँव से निकल चलें। अब हम अमान की फसल के लिए भी लौट कर नहीं आयेंगे......

उसे याद था कि उन्होंने रात के बढ़ते हुए अंधकार में गाँव छोड़ा था। उस रात महाजन की बैलगाड़ियां भी किसी चोर बाज़ार की लम्बी रहस्यमयी यात्रा पर चल पड़ी थीं। चावल ही चावल। इतना चावल कहां जा रहा था?

अब वह लंगर के दरवाज़े के सामने पहुँच चुकी थी। ...

उसी समय पता चला जब राखाल ने अपने हिस्से का दाल-भात ले लिया। उसने भी अपने हिस्से का दाल-भात संभाल लिया।

"अन्नदाता, सदा ही सुखी रहो!" वह बोली, "अन्नदाता की सदा ही जय?"

"मां, ठंडी दाल और ठंडा भात!" राखाल ने ललचाई दृष्टि से मां का दिल टटोलते हुए कहा, "यह तो बहुत थोड़ा-सा है।"

"थोड़ा भी बहुत है, बेटा!" जयश्री ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "अरे बेटा, यह भी न मिलता तो हम क्या कर लेते?"

वे नदी की ओर चले जा रहे थे। पीछे से वह लड़की जल्दी-जल्दी पग उठाते उनके साथ आ मिली।

"जरा रुक क्यों नहीं जाती, दीदी" लड़की बोली, "मेरी मां को भी आ लेने दो। हम एक ही गाँव के नहीं तो न सही। भगवान ने हमारा मिलाप करा दिया।"

"हां बहन, हम दुख के साथी हैं", जयश्री ने अपना आँचल सँभालते हुए कहा। उस समय उसकी आँखों में आश्चर्य-सा लहरा गया। जैसे वह कह रही हो—अरे, अरे! मेरा तो विचार था कि तुम इस युवक के साथ बैठ कर दाल-भात खाओगी।

पीछे से लड़की की माँ भी आ गई। आते ही उसने राखाल की ठोड़ी उठा कर उसे प्यार से चूम लिया और बोली—"अरे चंदा बेटा, थोड़ा दाल-भात तो तुझे मैं भी दे सकती हूँ अपने हिस्से में से।"

लड़की घबरा गई। वह बोली—"अरे सभी को तो जीवित रहना है, माँ! अपने हिस्से का दाल-भात तो हर किसी को स्वयं खाना चाहिये।"

नदी के किनारे पहुँच कर उन्होंने अपना-अपना दाल-भात खा लिया। राखाल के फूले हुए पेट पर दृष्टि जमाते हुए लड़की की माँ

कह रही थी—"अरे बेटा, तेरा पेट तो ऐसे नजर आता है जैसे किसी जमींदार के बेटे का हो।"

"यह तो कसती भोजन की बीमारी के कारण है, माँ!" जयश्री बोली, "अब कौन वैद्य राखाल को औषधि देगा?"

जयश्री की रानों में जैसे किसी ने सीसा भर दिया था। उसके कूल्हे भी बुरी तरह दर्द कर रहे थे। वह धरती पर लेट गई।

राखाल भी निढाल हो रहा था। उसके चेहरे पर एक रंग आता था एक रंग जाता था। जैसे दीया बुझ रहा हो। जैसे चाँद डूब रहा हो।

जयश्री उठ कर बैठ गई। लड़की और उसकी माँ भी घबरा गईं। उन्होंने राखाल को आराम से लिटा दिया। माँ धीरे-धीरे उसका पेट सहलाने लगी और वहीं लेटे-लेटे राखाल की आँख लग गई।

जयश्री बराबर घबराई हुई मालूम होती थी। बोली—"कुछ तुम्हें भी मालूम है बहन कि यह कलियुग कब खतम होगा?"

"यह तो बहुत कठिन प्रश्न है, दीदी, इसका उत्तर तो जनता के सेवकों को भी मालूम नहीं होगा जो हमें रोज समझाते हैं कि नया युग आने वाला है।"

लेटे-लेटे राखाल ने करवट ली। उसे पतला दस्त आया। जयश्री ने राखाल को पोंछ कर दूसरी ओर लिटा दिया और गमछा से ढाँप दिया। उसका दिल जोर-जोर से धक-धक करने लगा। इस बार फिर वह राखाल का पेट सहलाती रही।

"सतयुग—नया युग—यह कब आयगा, बहन?" जयश्री ने उड़ने के लिए आकुल पक्षी के समान पाँख फैलाते हुए कहा।

"यह तो मैं नहीं जानती हूँ, दीदी! सुनती हूँ,

में ज़मींदार न होंगे। जो हल चलायेगा, वही ज़मीन का मालिक होगा।"

"वह युग कब आयगा? सतयुग?"

"हमारे साथी कहते हैं—दीदी, यह दाल-भात हमें दान में नहीं दिया जा रहा। इस पर हमारा अधिकार है। वे कहते हैं सब लोग फिर अपने-अपने गाँव को लौटेंगे। फिर नया धान होगा। हम इतना खायँगे कि खूब मोटे हो जायँगे," उसने अपनी बाँहों को फैलाते हुए कहा।

जयश्री ने बहुत से हवाई किले बनाये। कलियुग खत्म हुआ। सतयुग शुरू हो चुका था। अब इस सतयुग का कभी अन्त न होगा। उसकी कल्पना जाग उठी। कन्हैया की बाँसुरी गूँजने लगी। एक नया गान........यात्रा वाले सभा में चौमुखा दीया घुमा रहे थे। लोग बढ़-बढ़ कर थाल में पैसे डाल रहे थे। कन्हैया कह रहे थे—अब इस देश में अकाल नहीं पड़ेगा, राधे! और राधा कह रही थी—देखो कन्हैया अब कभी ज़मींदार किसानों पर हुकम न चलायें, चोर बाजार भी सब खत्म हो जायँ ....कन्हैया कह रहे थे—जो हल चलाये वही ज़मीन का मालिक। ज़मींदार वही जो हल चलाये ......

राखाल की हालत खराब होती गई। जयश्री घबरा गई। उसने राखाल का सिर अपनी जांघ पर रख लिया। तो क्या यह दीया बुझ जायगा? जैसे वह इसे अपने आँचल में छुपा कर हवा के हमले से बचाने का यत्न कर रही हो। अरे, अरे! यहाँ तो दीये का तेल ही खत्म हो रहा है। हाय राम, मैं लुट जाऊँगी!

लड़की बोली—"घबराओ नहीं, दीदी! राखाल अच्छा हो जायगा।"

जयश्री होनी से बेखबर न थी। वह मृत्यु को देख सकती

थी। राखाल के गले में बाँहें डालते हुए उसने आकाश की ओर निगाह उठाई। जैसे वह किसी छिपी हुई शक्ति से प्रार्थना कर रही हो। उसने राखाल की नब्ज़ पर हाथ रखा और चीख मारी। राखाल की नब्ज़ डूब रही थी।

उसका लहू सब पानी बन चुका था। अब तो वह पानी भी खुश्क हो रहा था। सबके देखते-देखते उसने प्राण छोड़ दिये।

कन्या सत्कार समिति वालों को बुला लाई। वे तीन आदमी थे। जयश्री नहीं जानती थी कि सत्कार समिति वाले यह काम सेवा-भाव से करते हैं। इसलिए उसने अपनी कलाइयों के चांदी के कंगन उन्हें देने चाहे। पर उन्होंने इन्हें स्वीकार न किया, क्योंकि इस काम में लेना-देना तो होता ही नहीं।

वे दौड़ कर लकड़ी ले आये। जरा हट कर चिता बनाई गई। जयश्री ने अपनी चीथड़ा-चीथड़ा चादर में राखाल को कफना दिया। सत्कार समिति वालों ने उसे उठा कर चिता पर रखा। जयश्री ने अपने हाथ से चिता में आग लगाई।

लाल-लाल लपटों की पृष्ठ भूमि में रात के साये गहरे होते जा रहे थे। जयश्री बोली—"अभी कलियुग का अन्त होने में देर है। अभी सतयुग शुरू नहीं हो सकता।"

समिति वाले जा चुके थे। जयश्री चिता के पास लेट गई। लड़की और मां उसे दिलासा देती रहीं......जयश्री, ओ जयश्री! जैसे उसका पति उससे कह रहा हो—अरे मेरी निशानी तो तेरे पास रहेगी। अरे तू गर्भवती है, जयश्री! और फिर जैसे उसे मानसिक धचका सा लगा, यह भूख—भयानक भूख! और मैं गर्भवती हूँ। मेरी भूख कोई आज की भूख तो नहीं। यह युग-युग की भूख है। और फिर उसे ख़याल आया कि यह का कलियुग कभी खत्म नहीं होगा। हाय राम, सतयुग कैसे शुरू हो सकता है?

वह रात रतजगे ही में कट गई। सूरज की पहली किरणों के आकाश में जयश्री ने चिता से राख की चुटकी उठा कर माथे पर लगा ली।

उसकी कल्पना में फिर अनगिनत गिद्ध मंडराने लगे। ये गिद्ध बहुत भूखे थे। जैसे वह पूछना चाहती हो कि क्या अब ये गिद्ध जीवित इन्सानों पर झपटना चाहते हैं।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन।

जयश्री वहीं पड़ी रही। लड़की और मां के लाख अनुरोध करने पर भी वह लंगर की ओर जाने के लिए राजी न हुई। वह इसी तरह मर जाना चाहती थी।

"तुम तो गर्भवती हो, दीदी! और गर्भवती को सदा खुश रहना चाहिए," लड़की ने जयश्री के सीने पर अपना सिर थपथपाते हुए कहा।

जयश्री ने नाक सिकोड़ते हुए लड़की को परे हटा दिया। उसे तो इधर गर्भवती शब्द से भी घृणा हो गई थी।

मां बोली—"तेरे तो बेटा जन्मेगा, बेटी जयश्री!"

जयश्री उठ कर बैठ गई। उसने सोचा कि उसका बेटा सतयुग में जन्म लेगा, अपना भाग्य लायगा, वह सतयुग में पलेगा।

लड़की बोली—"तुम देखती नहीं दीदी कि धरती नई करवट ले रही है, अब नया युग शुरू होगा।"

"नया युग—सतयुग?"

"हाँ, दीदी लोग कहते हैं कि उन्होंने समय की मुड़ती हुई धारा को देख लिया है"।

"वे सच कहते होंगे।"

"वे कहते हैं अब नया प्रभात होगा, धरती की काया पलट जायगी।"

"सच"!

"वे कहते हैं अब नया धान उगेगा—जनता के लिए धान, सब के लिए धान।"

"फिर तो सतयुग आ रहा है, सतयुग!"

पास से मां ने चिढ़ कर कहा—"अभी सतयुग कहां है? अभी कलियुग है। मुझ से पूछो यह कलियुग कभी खत्म न होगा।"

माँ ने एक दलाल की बात छेड़ दी। जयश्री की आँखों में तारापद का रूप घूम गया। मां कह रही थी—"और वह मुझ से मेरी बेटी माँगता था। कहता था—तेरी बेटी तो राजकन्या है, इसके भाग्य में तो रानी होना लिखा है, बोल इसका क्या लेगी? निगोड़े ने रत्ती भर शरम न की।"

"तुमने क्या जवाब दिया, मां?" जयश्री ने हैरानी से पूछा।

"मैंने तो सौ बात की एक बात कहदी। न बाबा, मेरी लड़की तो भाग्यवती है। वह अपना भाग्य स्वयं चुनेगी।"

जयश्री ने सोचा शायद तारापद इधर आ निकला हो, शायद यह तारापद ही हो। लड़की सिर झुकाये बैठी रही और धूल पर गोल-गोल घेरे बनाती रही।

"हरामी, सूअर, राक्षस—जयश्री ने तारापद को मन ही मन में गाली देते हुये कहा—"पापों की नैया भर कर डूबती है।"

"हाँ बेटी, पापों की नैया भर कर डूबती है।"

"उस दलाल ने अपना नाम क्या बताया था, मां? तारापद तो नहीं था उसका नाम?"

"मैंने पूछा नहीं बेटी, और उसने बताया नहीं अपना नाम।"

"देखने में कैसा था वह? बहुत मोटा-ताज़ा, घुँघराले बाल बड़ी-बड़ी आँखें और आवाज ऐसी जैसे झाँझ बजती हो—कहो न माँ?"

"तुमने कैसे जान लिया बेटी? वह ठीक ऐसा ही था।"

"वह वही तारापद होगा, वही हमारे गाँव का तारापद।"

"तुम्हारे गाँव का तारापद ?"

"हाँ माँ, पहले तारापद भला आदमी था। उसने पहली वार गाँव में आने वाले दलालों को पुलिस के हवाले कर दिया। फिर स्वयं दलाल वन गया। यह कैसा कलियुग है ? देवता भी राक्षस वनने लगे।"

"पहले वस्त्र उजला होता है, वेटी ! मैला होने पर इसे धोया भी जा सकता है।"

उधर लड़की धूल पर वहुत वड़ा चक्र वना चुकी थी। जयश्री ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुये कहा—"तुम यही कहना चाहती हो न वहन कि समय भी एक चक्र है।"

"हाँ दीदी, इसका आदि है न अन्त।"

"सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग—कलियुग ! और कलियुग के वाद फिर सतयुग आता है। पहले वस्त्र उजला होता है। फिर मैला हो जाता है। और फिर जव यह धुल जाता है तो समझो सतयुग आ गया।"

"सतयुग जरूर आयगा, दीदी ! अपनी धरती होगी, अपने हल, अपने हँसिये। और धान उगाने वाले किसान कंगलों की तरह लंगर के सामने खड़े नहीं रहा करेंगे।"

जयश्री जमीन पर लेट गई। उसके चेहरे का रंग वदल रहा था। वह गर्भवती थी। कैसी-कैसी टीसें उठने लगती हैं ? अभी तो दो महीने वाकी हैं, उसने सोचा। पर पिछले तीन दिन से पेट में वच्चे की हरकत वन्द हो चुकी थी।

माँ वोली—"चन्दा वेटा तो समय पर जन्मेगा। हम तो तेरे पास ही हैं। तुझे चिन्ता काहे की, जयश्री ?"

......जयश्री, ओ जयश्री ! हम तो सौ-सौ पीढ़ियों से किसान हैं......हां पतिदेव, पर हमारा जमींदार हम पर सदा अत्याचार करता आया है........जयश्री ! हमारी अवस्था

कभी नहीं बदली......हाँ पतिदेव, हमारे गाँव में सदा से अकाल पड़ रहा है.........जयश्री, ओ जयश्री ! यह अकाल पहले सब अकालों की चर्म-सीमा है.........पर पतिदेव ! अब तो युग पलट रहा है ! कलियुग के गर्भ से सतयुग जन्म ले रहा है। इन टीसों का उठना जरूरी है.........।"

"हाय, मैं मर गई, मेरी मैया !" जयश्री बार-बार चिल्ला उठती थी। उसका कष्ट कोई साधारण कष्ट न था। लड़की कहीं से थोड़ा तेल माँग लाई थी। और मां बराबर एक दाई के समान जयश्री के पेट पर मालिश करती रही।

समय से पहले बच्चे ने जन्म लिया। था तो बेटा पर मुर्दा। माँ ने जयश्री को संभालते हुए कहा—"बच्चे को ढक ले, बेटी ! हाय राम, भाग्य को कौन बदल सकता है !"

जयश्री बेहोश पड़ी थी।

जरा होश आने पर वह हिली। उसने उठने का प्रयत्न किया। जैसे वह बच्चे का मुख देखने के लिए व्याकुल हो रही हो। पर एक धचके के साथ वह गिर पड़ी। उसका कष्ट सदा के लिए मिट गया। नया धान उगे या न उगे। अब उसे क्या ?

लड़की ने निकट भविष्य की ओर दृष्टि दौड़ाते हुए कहा—"जयश्री ने कहा था न माँ कि कलियुग का अन्त होने वाला है और पापों की नैया डूबने वाली है। क्या अपने धचके से जयश्री ने नैया को डुबोने के लिए आखिरी ज़ोर तो नहीं लगा दिया ?"

एक घोड़ा, एक कोचवान

शाह मुहम्मद के तकिये का एक हिस्सा काट कर अस्तबल बना लिया गया था। यह सब जोर-जबरदस्ती से हुआ। आखिर रमजान की छाती भी तो चौड़ी थी और इस लमतड़ंग जवान को देख कर सबके हौसले जवाब दे जाते थे। फिर जोर-जबरदस्ती का यह क़िस्सा और भी लम्बा हो गया। कबूतरों के दड़बे से लेकर मजार तक लीद बिखरी रहती थी। लीद बिखेरे रमजान का घोड़ा और उठाये मुसल्ली। जिस की नाक में बदबू आती वह लीद उठा देता। रमजान को तो घोड़े से सरोकार था। हाँ, घोड़े के थान को वह शीशे की तरह चमका कर रखता था।

कमेटी में शायद किसी की सुनवाई न हो सकती थी। रमजान अपने तांगे पर दारोग़ा को दरिया की सैर मुफ्त करा लाता था। दारोग़ा कहता—हमारे राज में रमजान को सब छुट्टी है। रमजान कहता—दारोग़ा का राज अटल रहे। उसकी आँखों में अस्तबल फिर जाता, कल्पना में घोड़े का थान और भी चमक जाता। स्नेह के एक नये अन्दाज से वह घोड़े की

और सोचता—दारोग़ा को शायद यह हरकत अच्छी न लगे, नहीं तो मैं तांगे से उतर कर घोड़े की आँखों में झाँकता और उसका सिर अपने सीने से लगा लेता।

घोड़े का नाम था ईदू। आदमी के खिलन्दड़े बच्चे की तरह उसे कुलेलें करते देख कर रमज़ान को विश्वास हो गया था कि बड़ा हो कर यह अबलक एक ख़ूबसूरत और होशियार घोड़ा निकलेगा। जब वह ईद के दिन उसे खरीद लाया था तो देर तक उसके दांतों की परीक्षा करता रहा था। आख़िर वह चार पुश्त से कोचवान था और घोड़ों के बारे में उसकी जानकारी गहरे अनुभव पर टिकी हुई थी। ईदू को नहलाते समय रमज़ान के हाथ उसकी काली मखमली पीठ पर फिसलते चले जाते थे। उसके सफ़ेद हाथ-पैर वह मल-मल कर धोता और फिर उसका मुँह खोल कर देखता कि दूध के दांत अभी कितने बाकी हैं। और ईदू अपनी थूथनी रमज़ान के सीने पर थपथपाने लगता। जैसे कह रहा हो—अभी से मुझे तांगे में जोतने की बात मत सोचो, रमज़ान मियां! अभी तो खेलने-मचलने के दिन हैं मेरे। पाँच साल की उमर से पहले अपने तांगे में मत जोतना। फिर देखना, मेरे फेफड़े कितने मज़बूत हो जाते हैं और मैं कितना भागता हूँ। रमज़ान कहता—अब नहाओगे भी आराम से या यों ही मुफ़्त की शरारत किये जाओगे, ईदू बेटा! मगर ईदू न मानता और रमज़ान अपनी मुश्की दुलहन को पुकार कर कहता—अरी अब इधर आ। देख, समझा दे इसे ज़रा। पर तूने ही तो इसे सिर पर चढ़ा रखा है इसकी पीठ पर हाथ फेर-फेर कर......मुश्क़ी दुलहन बड़ी अदा से झूम-झूम कर समीप आती और कहती—तुम हट जाओ। मैं ख़ुद नहलाऊँगी अपने बेटे को। तुम्हें तो मज़ा आता है इस बेचारे की शिकायतें करने में........और रमज़ान झुंझला कर कहता—ले संभाल अपने बेटे को।

अपने तरह-तरह के बेढंगे तरीक़ों से ईदू अपनी मुहब्बत ज़ाहिर करने की शक्ति रखता था। पिछाड़ी को वह अजब अन्दाज़ से उछालता था और रमज़ान को देख कर हिनहिनाने लगता था और रमज़ान कहता—बस ठहर जा, बेटा! अभी आया। तेरे लिये बहुत अच्छा मसाला मंगवाया है। खायगा तो खुश हो जायगा। पर ईदू इतनी आसानी से मानने वाला न था, लगातार हिनहिनाये जाता। जैसे कह रहा हो—दूर मत जाओ, रमज़ान मियां! मसाला तो फिर भी आ सकता है। बस मैं तुम्हें देखता रहूँ, तुम्हारी बातें सुनता रहूँ। रमज़ान कहता—अरे बेटा, वे सबर नहीं हुआ करते। ज़रा-सी देर में लौट आऊँगा। ईदू हिनहिनाना छोड़ देता। पर वह उदास हो जाता और फिर यों मालूम होता कि वह अभी चटख कर कह देगा—अच्छा, हो आओ बाहर, देर मत लगाना। और ईदू की ख़ूबसूरत थूथनी ज़मीन की तरफ झुक जाती।

पिछले साल से रमज़ान रंडुवे का जीवन गुज़ार रहा था। बीवी बेचारी गोटे के दुपट्टे तक के लिए तरसती रही थी। ज़माने के गर्म-सर्द ने रमज़ान को बहुत सताया था। साईं जी का उधार अलग बढ़ गया था। कहाँ से ले देता गोटे का दुपट्टा अपनी सुरखी दुलहन को? ले-दे कर वह ईदू ही से जी बहला लेता था। इस समझदार हमदर्द ईदू के स्थान पर उसके पास वही पहला मरियल-सा घोड़ा होता तो उसकी ज़िन्दगी एक ख़ामोश गर्म दोपहर बनी रहती।

अस्तबल में बैठे-बैठे अक्सर रमज़ान की आँखें मिच जातीं। जैसे वह कोई सपना देख रहा हो। उस समय उसे अनुभव होता कि ईदू की आँखें भी मिच गई हैं और वे दोनों एक साथ सुरखी दुलहन को देख रहे हैं। ईदू के गले में बाहें डाल कर वह पूछता—सच-सच बताओ, ईदू बेटा! तुम्हें सुरखी दुलहन तो

याद आती होगी, जो हर रोज़ सवेरे तुम्हें निहारी खिलाया करती थी।

सात साल के लम्बे अरसे में मुरकी दुलहन के कोई बच्चा नहीं हुआ। बाँझ ही वह धरती के नीचे क़ब्र में जा सोयी। किसी-किसी रात रमज़ान को यों महसूस होता कि उसकी गर्दन पर किसी बच्चे की नज़र न आने वाली उँगलियाँ रेंग रही हैं। जैसे क़ब्र में मुरकी दुलहन की कोख हरी हो गई हो और अल्ला की रहमत से उसका बच्चा अपने बाप के अस्तबल में आ पहुँचा हो। और वह सोचता कि यह सब ईदू की दुआओं का परिणाम है। आगे बढ़ कर उसके सपने में और भी मनोरंजक दृश्य सामने आता। वह देखता कि उसका बच्चा अकेला नहीं है। शहर-भर के बच्चे किलबिल करते उसकी ओर देख-देख कर मुस्करा रहे हैं, और ईदू हिनहिना रहा है। जैसे कह रहा हो—रमज़ान मियां, देखो तो यह नज़ारा और बताओ कि इन सब में ख़ूबसूरत बछेड़ा कौन-सा है।

यह सब सपने उसके सोये हुये सागर की लहरों को जगा देते थे। लोग समझते थे कि रमज़ान पहलवान है और यह कुछ झूठ भी न था। पर यह भी तो सच था कि बीबी की मौत के बाद उसकी रूह ने एक थरथर कँपनी का रूप धारण कर लिया था। जिस तरह यह चिड़िया जंगल में बैठी यों ही कांपती रहती है, उसकी रूह भी मुरकी दुलहन की याद में डोलती रहती थी।

आठ सेर का तो गेहूँ है, ईदू बेटा! रमज़ान अपनी तंग-दस्ती की कहानी छेड़ देता। जैसे हैवान का बेटा इंसान के ग़म को ठीक-ठीक समझने की योग्यता रखता हो—एक दिन तो साढ़े पाँच सेर तक का हो गया था आटा, ईदू बेटा! यह तो सरकार को रहम आ गया कि आठ सेर रुपये का भाव ठहरा दिया। और ईदू अपनी ख़ूबसूरत थूथनी ऊपर उठा कर रमज़ान

की ओर देखता। जैसे कह रहा हो—घबराओ मत, रमज़ान मियां, आटा फिर आ जायगा अपने भाव पर—रुपये का पंद्रह सेर। पर रमज़ान सिर झुका कर बैठ जाता। उसे यों महसूस होता कि कोई मकड़ी उसके दिमाग़ में अपना जाला बुन रही है। ईदू हिनहिनाता। जैसे कह रहा हो—वाह, रमज़ान मियां! खूब पहलवान हो तुम भी। अरे मियां, हौसला रखो। यह तकलीफें हमेशा तो नहीं रहतीं। रमज़ान का सिर उठ जाता। ईदू अपनी पिछाड़ी उछालता और रमज़ान की ओर देखने लगता। जैसे कह रहा हो—मुझे निहारी भी तो नहीं मिलती रही, रमज़ान मियां! पर कुछ परवाह नहीं। मैं तुम्हारे लिये सौ-सौ मील भागूँगा, खून-पसीना एक कर दूँगा।

और ईदू बहुत भागता और खून-पसीना एक कर देता। पर रमज़ान की आमदनी, जिसे वह हवाई रिज़्क समझता आया था, इन दिनों बहुत गिर गई थी। तांगे का साज़ बहुत पुराना था। नये रबड़ टायरों की अब कोई आशा नहीं थी। इनकी क़ीमत अब बहुत बढ़ गई थी। जैसे रात ही रात में मौसम बदल जाय। और साईं जी की किरचों की फिकर उसके दिमाग़ को छलनी किये देती थी।

ईदू का कुम्हलाया हुआ चेहरा देख कर रमज़ान अपने को मुजरिम समझने लगता। कहाँ वह उसे रोजाना डेढ़ मन हरा चारा और चार सेर दाना खिलाया करता था। पर अब तो इनकी क़ीमतें बहुत बढ़ गई थीं। पन्द्रह आने का हरा चारा आता था और दस आने का दाना, और रमज़ान उसे पूरी खुराक़ तो दूर रही, आधी खुराक़ भी न दे पाता था। उसे अपने आप से नफ़रत होने लगी। अब उसे यों अनुभव होता कि उसके दिमाग़ में ईदू की आखिरी लीद दाखिल हो रही है और उसके पेशाब की धार भी ज़रूर उसके दिमाग़ पर गिरेगी।

आदमी। भूखे घोड़े से काम लिया जाता है, जिसे वह अपना ज़रख़रीद ग़ुलाम समझता है।

भूख बहुत सताती तो रमज़ान को अपने पेट में एक उबलता हुआ लावा पैदा होता अनुभव होता और वह सोचता कि ईदू के पेट में भी लावा भड़क उठेगा। वह तांगे को रोक लेता। पर यह कोई इलाज थोड़े ही था। और ग़ज़ब ख़ुदा का—फ़ाक़ा के मारे लोगों की ओर देखते हुए उसे यह महसूस होता कि ये लोग उसे घूर रहे हैं और कह रहे हैं—कम्बख़्त ख़ुद तो मरेगा ही भूख से, पर भूख से ग़रीब घोड़े को क्यों मारता है? इसे बेच क्यों नहीं देता?

पर ईदू को बेचने का ख़्याल रमज़ान को सिरे से नामंज़ूर था। वह बहुत उदास रहता। नहाना तो दूर, कई-कई दिन वह मुँह तक न धोता। यहाँ तक कि उसे महसूस होने लगा कि उसके मैले शरीर की निचली तहों में भी दुनिया भर की ग़लाज़त भरती जाती है। उसकी ख़ाकी कमीज़ और साफे पर कीचड़ का रंग चढ़ गया था—शायद उसकी रूह पर भी।

भूख और ग़लाज़त में खोये हुए से रमज़ान ने अनुभव किया कि युद्ध के समाचार एक चुंबक शक्ति रखते हैं, जिसके सामने उसके रगोरेशे लोहचून के ज़र्रों की तरह खड़े हो जाते हैं।

"जानते हो जर्मन वाला क्या कहता है, ईदू?" उसने पूछा।

ईदू ख़ामोश रहा और रमज़ान बोला—"जर्मन वाला कहता है कि रूस वाला उसका सिक्का माने।"

थोड़ी देर बाद ईदू ने सिर हिलाया और थूथनी घुमा कर रमज़ान की आँखों में देखने लगा। जैसे कह रहा हो—यह कोई नई चीज़ नहीं है, रमज़ान मियां! शहर के चौथे दरवाज़े के बाहर रेडियो के गले से मैं भी जंग की गरमा-गरम ख़बरें सुन लेता हूँ।

जंग की तबाही की खबरें सुनते हुए रमजान को अपनी तकलीफें व्यर्थ और हेच नजर आने लगतीं। अस्तबल में बैठ कर हुक्के का कश लगाते हुये वह सोचता कि जर्मनी एक बहुत बड़ा तांगा है, जिस पर सवार होकर हिटलर रूस में से गुजरना चाहता है। पर जब एक दिन उसे किसी सवारी की जबानी पता चला कि रूसी किसान-मजदूर दो हजार मील लंबी दीवार बना कर हिटलर का रास्ता रोके खड़े हैं और हिटलर सारा जोर लगा कर भी अब इस इन्सानी दीवार को तोड़ कर आगे नहीं बढ़ सकता तो उसे बहुत खुशी हुई और अस्तबल में पहुँच कर वह ललकार उठा—रूस की सड़क पर हिटलर के नये रबड़ टायर भी काम न देंगे। और ईदू हिनहिनाया। जैसे कह रहा हो—मेरे लिये तुम्हारी कोई भी खबर नई नहीं हो सकती, रमजान मियां।

रमजान सोचता कि हिटलर की हार हो जाय तो यह जंग खतम हो जाय। यह राय उसने सवारियों की बातें सुन-सुन कर बनाई थी। जंग ने हर चीज के दाम चढ़ा दिये थे। सैंकड़ों हजारों मील लड़ी जाने वाली जंग के भयानक पंजे अभी से गरीबों के मुंह से रोटी छीन रहे थे। उसे इदू की धुंधली-धुंधली आंखों में शोक और भय गले मिलते दिखाई देते। जैसे वह जंग में मरने वालों की चीख पुकार सुन रहा हो—एक प्रतिक्षण बढ़ती हुई पुकार। जैसे एक किंचित भय उसकी रूह को अपनी आहनी मुट्ठी में दबा रहा हो।

· साही के कांटों की तरह लटकते हुए सिर के लंबे बालों में शायद रमजान ने उँगलियों से भी कभी कंघी न की थी। उसकी छाती की नाप भी अब घट चली थी। पर मुसल्ली को यह बराबर उतनी ही नजर आती थी—पूरी चालीस इंच। रमजान अब उसे कमी-कमार दरिया की ओर मुक्त चुना लाता और कबूतरों के दड़बे के क़रीब से लींद उठाते समय मु...

अन्दाज़ में नाच की सी चुहुल दिखाई दे जाती। और कभी मुसल्ली ईदू की पीठ पर हाथ फेर देता तो वह उसकी ओर थूथनी घुमा कर हिनहिनाता। जैसे कह रहा हो—मैं तुम्हें जानता हूँ, मुसल्ली !

एक दिन रमज़ान रात को ग्यारह बजे अस्तबल में वापस आया। मुसल्ली ने बताया कि ईदू के लिए वह हरी घास का गट्ठा लेने की कोशिश करता रहा, पर कोई घसियारिन उधार पर रज़ामन्द न हुई। ईदू ने दो-चार बार अपने मालिक के दायें बाज़ू पर थूथनी थपथपाई। जैसे कह रहा हो—कुछ परवाह नहीं, रमज़ान मियां ! मैं बग़ैर कुछ खाये ही रात काट लूंगा।

रमज़ान पसीना-पसीना हो रहा था। तकिये के समीप ही वह एक दूकान के सामने तांगा रोक कर तीन तन्दूरी रोटियां खरीद कर तांगे पर बैठा-बैठा निगल गया था। पर ईदू, जो भूखे पेट नई आबादी तक सालम सवारी लेकर गया था और भूखे पेट ही वहां से लौटा था, अब रात भर भूखा रहेगा। रात बहुत जा चुकी थी। इस समय तो दाना भी न मिल सकता था।

रमज़ान सोचने लगा कि आधी रात के बाद फ़रिश्ता आयगा और पूछेगा—तुम्हें कोई शिकायत तो नहीं है, ज़मीन पर चलने वालो, अपने मालिक से ?

और उसने सोचा कि ईदू कह देगा—आसमान पर रहने वालो, हमें शिकायत क्यों होने लगी ?

फिर उसने सोचा कि फ़रिश्ता ईदू के क़रीब आ कर कहेगा—तुम्हारे मालिक के लिए अब मैं दुआ करता हूँ। तुम भी दुआ में शामिल हो जाओ मेरे साथ।

उसे ख़्याल आया कि उस समय ईदू मेरे लिये दुआ में शामिल हो जायगा। क्योंकि अकेले फ़रिश्ते की दुआ ख़ुदा की दरगाह में क़बूल नहीं होती। हर रात को फ़रिश्ता आता है और हर घोड़े से यही सवाल करता है। मालिक की मामूली बद-

सलूकियों की तो कोई भी घोड़ा शिकायत नहीं करता। पर ईदू कितना नेक घोड़ा है कि भूखे पेट चौदह मील का सफ़र करने के बाद भी उसे कुछ नहीं मिला और फ़रिश्ते के सामने मेरे ख़िलाफ़ एक भी बोल मुंह पर न लायगा। हालांकि वह कह सकता है कि वह भूखा खड़ा है और उसके मालिक ने उसके देखते-देखते तीन तन्दूरी रोटियां खा लीं।

रमज़ान को नींद न आती थी। दिन भर के अनुभव अलग-अलग रूप धारण करते हुये अजीब-अजीब शक्लों में उसके सामने फिरने लगे। अंधकार में ईदू का मुँह नज़र न आ सकता था। वह उठ कर उसके समीप गया। वह बराबर खड़ा था। उसकी थूथनी पर हाथ फेरते हुए वह बोला—"अब सो जाओ, ईदू बेटा! फ़रिश्ता आये तो यह मत कह देना कि तुम भूखे हो।"

ईदू ने थूथनी न हिलाई और न वह हिनहिनाया ही। ईदू ऊंघ रहा है, यह सोच कर रमज़ान फिर अपनी खाट पर आ गया। वह सफ़ेदपोश नवयुवक, जो दस आने से शुरू कर के बड़ी मुश्किल से बारह आने में सालम तांगा लेकर नई आबादी गया था, रमज़ान की आंखों में घूम गया। वह उससे बहुत जल्द हिल-मिल गया था। रमज़ान ने उसे बताया था कि वह एक रंडुवा है। फिर उसने मुश्की दुलहन के लिए गोटे का दुपट्टा न ले सकने, ईदू को ईद के दिन खरीदने और दारोग़ा की बेगार काटने का सब हाल तफ़सील से कह सुनाया था। और सफ़ेदपोश नवयुवक ने हमदर्दी जताते हुए कहा था—काश, तुम रूस में पैदा हुए होते, कोचवान!

यह सुन कर कि रूस में सब तांगे सोवियत् सरकार के हैं, तांगे ही क्यों रेलें और मोटरें भी, उसे बहुत खुशी हुई थी। नवयुवक ने सिर हिलाते हुए कहा था—सब चीज़ें रूस में लोग

के लिये हैं और सब मिलकर अपने अपने हिस्से का काम, खेत में हो या कारखाने में, पूरा करते हैं। सब को भूख लगती है। कोई भूखा नहीं रहता। सब को सोवियत् के होटलों से खाने को मिल जाता है। और रमज़ान ने सोचा कि रूस में सचमुच बहुत मज़ा होता होगा। फिर उसकी पलकें बोझिल होने लगीं, दिमाग़ की बत्तियां टिमटिमाने लगीं। वह निद्रा-धारा में बहता गया......

उसने देखा कि आसमान से रोटियां बरस रही हैं। वह बहुत ख़ुश हुआ। सदियां गुज़रीं कि हज़रत मूसा की कौम के लिये 'मनो सलवा' उतरा करता था आसमान से। अब यह रोटियां बरस रही हैं। यह नये ज़माने का 'मनो सलवा' है। सब ग़रीबों के लिये अच्छी ख़ैरात है ख़ुदा की। अब कोई भूखा तो नहीं रहेगा। वह रोटियों की तरफ़ लपका....पता चला कि ये रोटियां नहीं हैं, बल्कि गोल-गोल चौड़े-चौड़े उपले हैं—रोटियों की शक्ल के उपले! तोबा तोबा, अल्ला मियां भी खूब मज़ाक करने लगते हैं ज़मीन वालों के साथ...

उसकी आँख खुल गई। अल्ला की लानत इन रोटी नुमां उपलों पर। वह झट उठ कर बैठ गया। ईदू उसका मुँह ध्यान से देख रहा था। जैसे कह रहा हो—मुझे रात भर नींद नहीं आई, रमज़ान मियां! तुमने भी रतजगा किया होता तो एक अजब तमाशा देखा होता। मैं तो हैरान रह गया। आसमान से रोटियां बरसने लगीं। यहां वहां रोटियाँ ही रोटियाँ नज़र आती थीं। पर इससे पहले कि तुम जाग उठते और मुझे खोल देने पर रज़ामन्द हो जाते, रोटियां न जाने किधर गुम हो गईं। रमज़ान ने सोचा कि शायद इन्सान की तरह हैवान को भी सपने आते हैं।

मुसल्ली कुछ हरी घास और दाना ले आया तो ईदू हिनहिनाने लगा—सूरज की किरणें छन-छन कर उसके काले मख़मली

शरीर पर पड़ रही थीं। मुसल्ली ने समीप आ कर दाने वाला बट्टल ईदू की खुरली में रख दिया। ईदू फिर हिनहिनाया। जैसे कह रहा हो—जब भी कोई खमीरी गुलगुला कह कर तुम्हारा मजाक उड़ाता है, मैं चाहता हूँ उसे काट खाऊं, मुसल्ली! और वह आदमी रमजान ही क्यों न हो—सवा गज छाती वाला, छः फुट ऊंचा लमतड़ंग रमज़ान।

मुसल्ली बोला—"जीता रह, ईदू! अल्ला रसूल की अमान!"

रमज़ान ने अपनी जेब में हाथ डालते हुये मुसल्ली को पास बुलाया। रमज़ान बहुत शान्त नज़र आता था......

एक दिन, दो दिन, पाँच दिन। बड़ी मुश्किल से रमज़ान ने आठ रुपये बारह आने जोड़े थे कि दस रुपये की किश्त की अदायगी का समय आ पहुँचा। साईं जी आ धमके और इधर-उधर की बातें करने के बाद असली तान दस रुपये पर टूटी। पहले तो रमज़ान के जी में आया कि साईं जी से कह दे कि उसके पास सिर्फ पाँच रुपये हैं, जो वह खुशी से दे सकता है और बाकी के पाँच रुपये कुछ दिन ठहर कर अदा कर देगा। कोशिश करने पर भी यह पाँच रुपये जल्द अदा न कर सका तो अगली किश्त दस की बजाय पन्द्रह की हो जायगी। पर इसके पहले कि वह कोई ऐसी बात शुरू करता, साईं जी कह उठे—"तुम्हारी किश्तों का तो कुछ झगड़ा नहीं है, रमज़ान मियाँ! फिर तुम तो सयाने हो। वक्त पर किश्त अदा करदी तो ज्यादा आसानी देने वाले ही को रहती है।"

रमज़ान ने ईदू की ओर देखा। जैसे उसकी राय मांग रहा हो। बे ज़बान ईदू की आँखों में रमज़ान ने उसके जज़बात पढ़ लेने की विद्या सीख ली थी। उसकी सिफारिश यही मालूम होती थी कि जेब की सब नकदी पैसा-पैसा साईं जी के सामने ढेरी कर दी जाय। और रमज़ान ने यही किया।

साईं जी ने रक़म गिन ली। उनके चेहरे पर एक वहशियाना हँसी फूट निकली।

"बात कैसे बनेगी, रमज़ान मियां ? दस रुपये की ज़रूरत है और सवा रुपये की कमी रह गई।"

रमज़ान का दिमाग़ सोचने से रुक गया था। वह चौंक पड़ा—"सवा रुपये की कमी रह गई है ? पैसा-पैसा तो ढेरी कर दिया, साईं जी ! अब क्या कहते हो" ?

"यही कि सवा रुपये की कमी रह गई"।

रमज़ान को ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई उसके दिमाग़ में दाख़िल हो कर उसकी सबसे ज़रूरी बाल कमानी नोंच रहा हो। जैसे उसके दिल में सूराख़ किया जा रहा हो ताकि उसका सब ख़ून निकाल लिया जाय। उसने ईदू की ओर देखा। उसकी सिफ़ारिश यही मालूम होती थी कि कल शाम का वादा कर लिया जाय। और उसने यही वायदा कर लिया।

साईं जी के चेहरे पर ख़ुशी की लहर दौड़ गई और वे कबूतरों के दड़बे के पास पड़ी हुई लीद को देखते हुए बाहर निकल गये।

ईदू हिनहिना रहा था। उसकी हिनहिनाहट में उसके सारे आत्माभिमान की भावना मौजूद थी। वह रमज़ान की तंगदस्ती से परिचित था। पर शायद वह हमेशा एक आत्माभिमानी कोचवान के तांगे में जुतने की इच्छा रखता था। रमज़ान का सिर झुक गया था। जैसे सदियों की घनी ढेर किश्तों ने अपना सारा बोझ उसकी गर्दन पर डाल दिया हो।

गीली आँखों से रमज़ान ने ईदू की ओर देखा। ईदू ने अपनी थूथनी रमज़ान के कंधे पर रख दी और फिर धीरे-धीरे उसे सहलाने लगा। जैसे कह रहा हो—सवा रुपया भी कुछ चीज़ होती है, रमज़ान मियाँ ? क्यों घबराते हो ? और रमज़ान ने

सिर उठा कर ईदू की आँखों में उसकी भावनाएँ पढ़ लीं—अच्छा सवा रुपया अब तुम्हारे ज़िम्मे रहा, ईदू बेटा!

अगले रोज़ रमज़ान शाम को अस्तबल में पहुँचा तो उसकी जेब में सिर्फ़ एक रुपया था। उसकी हालत बहुत कुछ एक हारे हुए जुवारी की सी थी, जिसकी तक़दीर को साँप सूँघ गया हो।

तांगे से खोल कर ईदू को उसके थान पर बाँधा गया तो वह पिछाड़ी उछाल-उछाल कर थान की ज़मीन सूँघने लगा। जैसे वह मिट्टी खाने को तैयार हो गया हो। एक पिटे हुए गधे की तरह उसका एक-एक जोड़ दुख रहा था। वह चाहता था कि रमज़ान उसके शरीर पर मालिश करके उसकी थकान दूर कर दे। पर रमज़ान की अपनी थकान भी तो आज कुछ कम न थी। वह गीली आँखों से रमज़ान को देखने लगा। जैसे कह रहा हो—तैयार हो जाओ, रमज़ान मियां! साँईंजी आते ही होंगे।

रमज़ान ने फैसला किया कि साँईं जी को कुछ न दे, यों ही टालमटोल कर दे। वह खाट डाल कर बैठ गया। और मुसल्ली हुक्का ताज़ा करके छोड़ गया था।

ईदू बहुत उदास था। उसकी बेकार रहने वाली अंतड़ियाँ बाहर आना चाहती थीं। अबलक के बेटे को इन्सान से कई गुना ज़्यादा भूख लगती है। बेचारा ईदू! उसकी थूथनी पर पसीने की बूँदें फूट आईं। धीरे-धीरे उसने अपने पेट को अन्दर पिचकाना शुरू किया। भूख तो बढ़ रही थी, बढ़ती आ रही थी और उसकी एक-एक अंतड़ी में बरमा घुमा कर सुराख़ कर रही थी।

रमज़ान उदास था। साँईं जी लाख बुलाया करें, वह उनसे बोलेगा ही नहीं आज। चुप्पी साध लेना कुछ मुश्किल थोड़े ही है। मत मारी गई है साँईं जी की। बहुत दिक करते हैं। कोई किसी के रुपये रख तो नहीं लेना। थोड़ा भी तो सब्र—

उसने अपने मन में झाँक कर देखा। वहाँ धुँधली सफ़ेदियां पैदा हो रही थीं—ज़हर की सफ़ेदियां। आज साँईंजी बच कर न जायेंगे। ज़रा-सी बस उनकी ज़बानदराज़ी की देर होगी और यह पहलवानों का सरदार कोचवान उन्हें ठीक कर देगा। आज वह अपने ईदू के सामने अपनी ज़वांमरदी का सबूत देगा।

और साँईंजी आ गये। वे चुप-चुप-से नज़र आते थे। वे रमज़ान की खाट पर बैठ गये। रमज़ान के मन की ज़हरीली सफ़ेदियाँ न जाने कहाँ दबी रहीं। उसने सोचा कि कोई नरम-सी बात कह कर टाल-मटोल कर दे। लेकिन उसके होंठ न हिले। जैसे यों गोल कुण्डली मारे यों खामोश बैठा रहेगा हमेशा।

"किस्तों का मतलब यही होता है, रमज़ान मियां," साँईं-जी बोले—"कि रक़म आसानी से उतर जाय।"

रमज़ान ने बेदिली से सिर हिला कर कहा—"हाँ, साँईंजी!"

"यानी एक किस्त का थोड़ा सा बकाया भी दूसरी क़िस्त में शामिल न होना चाहिये और साफ़ बात तो यह है कि इसमें ज्यादा फ़ायदा कर्ज़दार का ही मंज़ूर होता है।"

"हाँ, साँईंजी"! रमज़ान ने ईदू की तरफ़ आँखें घुमाते हुए जवाब दिया। उधर ईदू हिनहिनाया। जैसे वह अपने मालिक के साथ किसी तरह की नाइन्साफ़ी पसन्द न करता हो और इस बात से जल रहा हो कि रमज़ान ने आखिर शराफ़त का पल्लू क्यों पकड़ रखा है इतनी मज़बूती से। क्यों नहीं धता बता देता इस साँईं जी को?

"तुम्हारी ईमानदारी, तुम्हारी दानाई और सबसे बड़ी बात है तुम्हारी शराफ़त," साँईं जी ने पैंतरा बदल कर कहा, "इसमें तो कोई मुझे शक नहीं गुज़रा।"

"आप मालिक जो हुए", रमज़ान ने नरम हो कर कहा।

"पर किस्त की अदायगी तो ज़रूरी है वक्त पर, रमज़ान

मियां !"

फिर साँईं जी ने रमज़ान के कन्धों पर हाथ रखते हुए कहा—"और यह मैं अपनी गरज़ से थोड़े ही कहता हूँ। जल्दी इस बोझ से छुटकारा पाने का यही एक तरीका हो सकता है।"

"आज तक तो किसी ने मुझ पर ठीकरा नहीं फोड़ा," साँईं जी !"

"यही तो मेरा भी ख्याल है," साँईंजी ने उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा और उसकी खाट से उठ कर खड़े हो गये।

जेब से रुपया निकाल कर रमज़ान ने साँईं जी के सामने फेंक दिया।

"और चवन्नी ?" साँईंजी ने रुपया उठा कर कहा।

रमज़ान ने ईदू की तरफ़ देखा। वह थूथनी हिला रहा था। जैसे कह रहा हो—रुपया तो तुम दे ही बैठे, रमज़ान मियां ! अब कल चवन्नी भी मारना साँईं जी के माथे से। और रमज़ान ने कल का वायदा कर लिया।

साँईं जी जा चुके थे। रमज़ान ने महसूस किया कि उसे चारों तरफ़ से निराशा ने घेर रखा है। सदियों की अनगिनत किस्तों में आखिर एक रुपये की अदायगी से कितना फ़र्क पड़ सकता है। वह बहुत उदास था। जैसे उसका दिल बुझ जायगा टिमटिमा कर—अस्तबल के चिराग़ की तरह।

ईदू अपने थान पर भूखा बँधा था। रमज़ान उसके सामने शर्मिन्दा होना नहीं चाहता था। बिना बिस्तर बिछाये ही वह गिर पड़ा। उसने एक करवट भी न बदली। पीठ तो तख्ता हो गई थी। कोई और समय होता तो वह ईदू की ही तरह हिनहिनाने लगता। वह थका-मांदा निढाल पड़ा रहा। वह चाहता था कि सो जाय। तने हुए पेट पर तो नींद दौड़ी आती है। न जाने आज वह किधर ग़ायब हो गई थी।

फिर मुसल्ली आ पहुँचा। कहीं से वह दो रोटियाँ और अचार की फाँक ले आया था।

"रमज़ान, ओ मियां रमज़ान"! दिल में गुदगुदी-सी महसूस करते हुए वह बोला—"देख तेरे लिये रोटियां लाया हूँ। तू भूखा क्यों रहे आखिर? तेरे करीब ही मैं सो जाऊँ एक पेट से ज़्यादा खा कर। न बाबा, यह तो न होगा मुझसे। आखिर मैं इस कुतब आज़म के मज़ार का मजावर हूं और मैं अल्ला और उसके कुतब से डरता हूँ।"

रमज़ान का ख़याल फौरन 'मनो सलवा' की तरफ़ दौड़ गया। मुसल्ली रोटियां रख कर चला गया था। रमज़ान ने सोचा, आख़िर भेज ही दिया न मेरे अल्ला ने और मुझे किसी का दरवाज़ा खटखटाने की नौबत नहीं आई। उस समय ईदू के हिनहिनाने की आवाज़ रमज़ान के कानों में आई। आज ईदू किसी तरह रमज़ान की आखिरी चवन्नी के लिये दरिया तक चला गया था। इस समय तक रमज़ान ने 'मनो सलवा' का एक टुकड़ा मुँह में डाल लिया था, पर झट से उसने लुकमे को हथेली पर उगल कर दूर कुएँ की मुँडेर पर फेंक दिया और बोला—"जब तक तेरे लिये दाना, तेरे लिये 'मनो सलवा' नाज़िल नहीं होता, मैं खाना नहीं खाऊँगा, ईदू बेटा!"

और रमज़ान ने काग़ज़ को लपेट कर एक तरफ रख दिया और ज़बरदस्ती अपनी आँखों के किवाड़ बन्द करने लगा।

सतलज फिर बिफरा

इन जनूनी लोगों की बातों पर उन्हें क्रोध आ रहा था। कभी कोई बड़ा-बूढ़ा बोल उठता जैसे फटा हुआ ढोल धपधपाये, कभी कोई ऐसी आवाज़ उभरती जैसे गीला पटाखा फट जाय। सतलज उनका मुंह चिढ़ा रहा था। पर बड़े-बूढ़े प्रार्थना के लिये हाथ उठाये खड़े थे। बच्चों के लिये यह हुल्लड़ मचाने का अवसर था। अधेड़ उमर के लोग किसी तरह अपनी घबराहट को जाहिर नहीं होने देना चाहते थे। अतरसों रात से पानी का जोर बढ़ गया था, लेकिन पीर गाँव में न था। बड़े-बूढ़े कह रहे थे—बस पीर के आने की देर है, उसे देखते ही सतलज शराफ़त से पीछे हट जायगा। इस शोर में युवकों की आवाज़ें अलग विशेषता रखती थीं।

सखीचन्द तो खैर इसी गाँव का रहने वाला था, पर नीरजा के लिये यह दृश्य नया था। वहां खड़े-खड़े उसे वे बातें याद आईं जो उसने कालेज के लान में बैठे-बैठे सखीचन्द से सुनी थीं—तेरी बात दूसरी है, नीरजा! तू अभी सतलज से बातें नहीं कर पाई। तूने सतलज को देखा ज़रूर है, पर रेल के डिब्बे

में से। इतने बड़े दरिया से तो निहायत अदब से मिलना चाहिये।
आराम से किनारे पर बैठे रहो। घंटों पानी की तरफ़ देखते
जाओ। फिर कहीं कोई उसका रहस्य पा सकता है। पर रेल के
डिब्बे में ;से उसकी ओर देखकर तू कैसे उसका रहस्य पा
सकती थी?......और इसके जवाब में उसे ख़ामोश पाकर
सखीचन्द ने फिर कहा था—सतलज की पुरानी महानता अब
कहाँ है, नीरजा? बहुत-सा पानी नहरों में चला जाता है। वह
भी बुरा थोड़े ही है। खेतों की सिंचाई होती है। पर मैं कहता हूँ
सतलज इसी तरह ग़रीब होता चला गया तो एक दिन बेचारे
का दीवाला पिट जायगा......"

सखीचन्द ने सिगरेट सुलगाई। नीरजा परे हट गई। पर
उस समय उसे तम्बाकू ही से नहीं अपने वजूद से भी घृणा होने
लगी थी। काहे को वह इधर चली आई? आराम से लाहौर में
रहती, रोज़ नया जूड़ा बाँध कर निकलती, नई से नई साड़ी
पहनती, अनारकली में मुस्कराहटें बिखेरती। उसका विचार ग़लत
निकला। लानत है सतलज पर, सतलज के पानियों पर, फिर
कहा जाता है कि सतलज ग़रीब है......

सिगरेट का कश लगाते हुये सखीचन्द ने नीरजा के समीप
होने का यत्न किया और कहा—"इन जनूनी लोगों को हम न
समझा सकेंगे, नीरजा!"

पानी का ज़ोर बढ़ रहा था। बड़े-बूढ़े जो अब तक दुआ
के लिये हाथ उठाये खड़े थे, बुत मालूम होते थे। बच्चों का हुल्लड़
किसी क़दर धीमा पड़ गया था। अधेड़ उमर के लोग पीर का
इन्तज़ार करते-करते ऊब गये थे। युवक नीरजा के जूड़े की ओर
घूर रहे थे। यह वह जूड़ा न था जिसे नीरजा स्वयं बाँध सकती
इसे हमेशा की तरह माँ से बँधवा कर लाई थी। पहले मोटी
मेढियाँ गूँथी जातीं, फिर उन्हें फुरतीली होशियार ऊंगलिय

बड़े कलात्मक ढंग से यह रूप दे देतीं। सखीचन्द को ख्याल आया कि गाँव के एक-एक युवक से नीरजा का परिचय कराये और साफ़-साफ़ बता दे कि उसका जूड़ा बंगाली परम्परा का प्रतीक है और यह भी बता दे कि उसकी रगों में पंजाबी और बंगाली रक्त मिल कर बह रहा है।

नीरजा को अपने बूढ़े प्रोफ़ेसर का ध्यान आया, जो हमेशा इस बात पर जोर देता कि हिन्दुस्तानी संगीत पर यूनानी प्रभाव का आधिपत्य है। उसे लम्बा क़हक़हा भी याद था जो एक बार बूढ़े प्रोफ़ेसर का मज़ाक उड़ाते हुये उसके ओठों से फूट निकला था। और उसने शरारती निगाहों से इधर-उधर देखते हुए कहा था—फिर तो श्रीमान कल को कहेंगे कि हमारी कोयल पर भी किसी यूनानी पक्षी का प्रभाव ही अधिक है। और इस पर सारी श्रेणी खिलखिला कर हँस पड़ी थी। सब लड़के उसे एक मूर्ति समझते थे जिसे अभी-अभी किसी कलाकार ने प्रदर्शिनी में ला रखा हो। अपने झुमकों की थिरकन से वह हमेशा सखीचन्द को अपनी ओर आकर्षित किये रहती और तीर्थ, जो इस पंजाबी पिता और बंगाली माता की बेटी को दोगली कहने से बाज़ न आता, उसका सबसे बड़ा ईर्ष्यालु था।

सखीचन्द को भी तीर्थ का ख्याल आया। जैसे वह झाड़ियों में छिपा बैठा हो और उनकी ओर एक लम्बा क़हक़हा फेंकने वाला हो। जब भी वह उससे कहता कि नीरजा खूब गाती है, वह जी खोलकर ज़हर उगलता और कहता—हिन्दुस्तान की ग़ुलामी का सबसे बड़ा कारण है उसकी संगीत-सम्बन्धी दिलचस्पियाँ। उसने सोचा अच्छा ही हुआ कि इस अवसर पर, जब सारा गाँव संकट में है, किसी को गाने का ध्यान नहीं आ सकता, न नीरजा किसी फिल्मी गीत की धुन गुनगुनाने की हिमाक़त कर सकती है।

यह शोर भी तो एक बेसुरा गीत था। बार-बार कुछ स्वर ऊँचे उठ जाते। नीरजा हैरान थी कि जब लोगों का शोर पानी को नहीं रोक सकता तो अकेले पीर की दुआ कैसे सफल टोना बन कर पानी का ज़ोर घटाती चली जायगी। हिन्दू और मुसलमान सब पीर का इन्तज़ार कर रहे थे। कुछ सिक्ख इस हुजूम से पीछे हट कर खड़े हो गये थे, जैसे उन्हें पीर पर विश्वास न हो।

अपनी-अपनी बही को दुकानों पर छोड़कर गाँव के बनिये भी चले आये। एक स्थान पर खड़े होकर वे भी इस संकट की ओर निहारने लगे। थोड़ी देर के पश्चात् वे भी सिक्खों की टोली में सम्मिलित हो गये। शायद सबसे अधिक खतरा उन्हीं को अनुभव हो रहा था। फिर सिक्खों की टोली से अलग होकर वे बड़े हजूम की ओर सरकने लगे।

"राम, रहीम, गुरू में कुछ भेद नहीं", एक बूढ़ा कह रहा था—"श्रद्धा चाहिए श्रद्धा। पुजारी, पीर, ग्रन्थी—सब उसी के हैं, उसी के गुण गाते हैं।"

फिर वह सखीचन्द के समीप आकर बोला—"लाहौर से कब आये थे, बेटा?"

"कल रात, बाबा!" सखीचन्द ने चिल्लाकर कहा।

नीरजा समझ गई कि बाबा बुढ़ापे में बहरे हो रहे हैं। बाबा ने नीरजा को देखा-अनदेखा न किया, क्योंकि अभी उसकी निगाह क़ायम थी। सखीचन्द के सिर पर वह स्नेह से हाथ फेरते हुये बोला—"और यह कन्या कुंवारी?"

"इसके पिता एक पंजाबी संगीताचार्य हैं, बाबा! और इसकी माता है ख़ास ढाके बंगाले की, ख़ास ढाके बंगाले की बेटी। वह बड़ी नेक और शरीफ़ औरत है—हाँ, बाबा!"

"तो इसके पिता को ज़रा डर न [illegible]

ढाके बंगाले की औरत परदेसी को मक्खी बना कर दीवार से चिपका देती है। तो यह कोई अच्छी बंगालन होगी, बेटा! क्या नाम है इस कन्या कुंवारी का?"

"नीरजा।"

"यह भी कोई ढाके बंगाले का नाम मालूम होता है। अब कहाँ हैं इसके माँ बाप, बेटा?"

"लाहौर में बाबा!"

"तो वह बंगालन बहुत अच्छी निकली। परदेसी को अपनी गुलामी में रखने की बजाय खुद उसकी गुलाम हो गई। लाहौर में ही जन्म हुआ था इस कन्या कुंवारी का?"

"हाँ बाबा, लाहौर ही में। इसे सतलज से बातें करने का शौक था, बाबा! पर सतलज को निर्दयी देखकर वह अपनी भूल पर पछता रही होगी।"

"पछताने से क्या लाभ? पीर के आने की देरी है। पानी पीछे हट जायगा। पचास साल से तो मैं सतलज को पीर के हुक्म में बंधा हुआ देख रहा हूँ।"

बाबा ने देखा कि सिक्खों की टोली भी बड़े हजूम में सम्मिलित हो चुकी है। यह अच्छा ही हुआ, उसने सोचा, एक का खतरा सबका खतरा। एकता बड़ी चीज है। पीर भी आ रहा होगा। रात का भेजा हुआ आदमी सवेरे से दो घंटे पहले ही पीर के पास जा पहुंचा होगा और वहाँ से चलने में पीर ने देर न की होगी।

परे एक बच्चा रो रहा था। उसके साथी ने उसे धक्का दे दिया था। बाबा ने पास जाकर उसे उठाया और अपनी जेब से गुड़ का छोटा-सा टुकड़ा निकालकर उसके हाथ में दे दिया। बच्चे की सुबकियाँ झट रुक गईं। उसका शरारती साथी, जो समीप ही खड़ा था, ललचाई हुई निगाहों से उसे देख रहा था।

जैसे कह रहा हो—अगर गिरने का इनाम गुड़ का टुकड़ा हो सकता है तो लो मैं खड़ा हूँ, लो मुझे भी गिरा दो। और नीरजा ने सोचा कि सखीचन्द भी उसे गिराकर बाबा से गुड़ प्राप्त कर सकता है।

"यों कब तक खड़ी रहोगी, नीरजा?" सखीचन्द कह रहा था, "मैं जानता हूँ बाबा की बातें तुम्हें अच्छी नहीं लगीं। बुज़ुर्गों की बातें ऐसी ही होती हैं, नीरजा!"

"अच्छी क्यों नहीं लगीं बाबा की बातें", नीरजा ने गुस्सा झटकते हुए कहा, "बाबा से कहीं ज्यादा तो मुझे तुम पर क्रोध आ रहा है। बाबा ने तो केवल इतना ही पूछा था—और यह कन्या कुंवारी? इसके उत्तर में इतना ही कह दिया होता कि यह कपूर साहब की सुपुत्री है और हम कालेज में साथ-साथ पढ़ते हैं और अब वह सतलज के दर्शन करने चली आई है। इस तरह बात वहीं खत्म हो जाती। पर ढाके बंगाले की चर्चा छेड़कर तुमने बाबा के आश्चर्य को निमंत्रण दिया। यह सब तुम्हारी शरारत थी।"

"बुढ़ापा सर पर आ पहुँचा। पर तुमने देखा नीरजा कि बाबा के मन पर अभी तक कन्या कुंवारी सवार है," सखीचन्द ने सफाई पेश की, "ढाके बंगाले के जिक्र की देर थी, तुमने देखा बाबा कहाँ से कहाँ जा पहुँचा।"

"मैं सब समझती हूँ, सखीचन्द!" वह चमक कर बोली।

सखीचन्द कह उठा—"परे उस पार वह टीकरा है, नीरजा, जहाँ खड़े-खड़े सिकन्दर ने अपने सूरमाओं को आगे जाने से इन्कार करते हुए सुना था।"

"मैं कुछ नहीं जानती, सखीचन्द!"

"परम्परा यही कहती है।"

"तुम परम्परा का विश्वास कर सकते हो, सखीचन्द!"

सखीचन्द ने कई बार इस परम्परा पर सन्देह किया था। "परम्परा वह वर्फ़ है जो एक बार जम कर पिघलना जानती ही नहीं," नीरजा की ओर गहरी दृष्टि से देखते हुये वह बोला, "हाँ मैं समझ सकता हूँ, नीरजा! सिकन्दर और उसके सूरमा घुड़सवार इस गाँव तक अवश्य आ पहुँचे थे।"

"और कुछ यूनानी सूरमा यहीं बस गये होंगे।"

"तुम ठीक कहती हो, नीरजा! कुछ यूनानी सूरमा यहीं बस गये होंगे। यहीं उनके ब्याह हुए। हाँ, मैं देख सकता हूँ इन लोगों के चेहरों पर यूनानी और पंजाबी रेखाओं का सम्मिश्रण नजर आता है। इनकी रगों में अब तक यूनानी और पंजाबी रक्त साथ-साथ बह रहा है और सबसे बढ़ कर यह कि इनकी संस्कृति भी दोग़ली है।"

नीरजा ने नाक सिकोड़ी। दोग़ली शब्द से उसे हार्दिक घृणा थी, पर वह यह भी जानती थी कि आवश्यकता आ पड़ने पर इसका प्रयोग निषिद्ध नहीं ठहराया जा सकता।

सखीचन्द ने क्षमा-याचक दृष्टि से नीरजा के चेहरे का अवलोकन किया जहाँ पंजाबी और बंगाली रेखाएँ मिली-जुली नजर आती थीं। उसे ख़याल आया कि कपूर साहब भी एक यूनानी सूरमा के समान बंगाल के उस सुदूर गाँव में जा पहुँचे थे। जाते ही उन्होंने अपना गान छेड़ दिया होगा, वहीं उन्हें घुंघराले बालों वाली दुल्हन मिल गई जिसने नीरजा को जन्म दिया। नीरजा की सीधी नाक कपूर साहब की ऋणी है, पर उसके घुंघराले बाल और पेशानी और ठोड़ी की बनावट हूबहू बंगाली कला का नमूना है और उसके मद-भरे नयन कह रहे हैं—इसी जगह बंगाल और पंजाब की सीमाएँ मिलती हैं।

नीरजा चिल्लाई—"ये लोग तो सतलज में बह ही जायेंगे और इनकी अक्ल तो कभी की बह चुकी है, क्योंकि उन्हें

अपने पीर पर बेबुनियाद विश्वास है। हम भी क्यों बह जायँ? अब तो वह पीर आने से रहा।"

सखीचन्द ने उसे तसल्ली देते हुये कहा—"घबराती क्यों हो, नीरजा! हमारे सूरमाओं से तुम्हें वास्ता नहीं पड़ा।"

"तुम्हारे सूरमा—हाँ, तुम्हारे सूरमा!" नीरजा ने व्यंग्य पूर्वक कहा—"तुम्हारे सूरमा जो सिकन्दर के आक्रमण को न रोक सके थे।"

सखीचन्द के जी में तो आया कि इसका खरा-खरा जवाब सुना डाले—अरे जब बंगाल का सुदूर ग्राम अकेले कपूर को न रोक सका और सब के देखते-देखते कपूर ने एक बंगाली छोकरी को दुलहन बना लिया तो हमारा गाँव इतने यूनानी सूरमाओं को कैसे रोक सकता था। जब ढाके बंगाले का जादू काम न आया तो हमारे टोने टोटके भला क्या कर सकते थे। उसे ख़याल आया कि सिकन्दर के आक्रमण का छोटा-मोटा उत्तर तो गाँव के सूरमाओं ने अवश्य दिया होगा और अपनी शक्ति अनुसार उन्होंने उसे रोकने का यत्न भी किया होगा। पर सूरमाओं का तूफ़ान किसके रोके रुका है? इसकी लहरें गाँव के सभी घरों में घुस आईं, बहुत सी कन्याएँ यूनानी सूरमाओं की दुलहनें बनीं। उन्होंने सुन्दर बालकों को जन्म दिया और उनकी लोरियों में यूनानी घुड़सवारों की टाप भी घुली हुई थी।

नीरजा फिर चिल्लाई—"सखीचन्द, इन जनूनी लोगों को हम न समझा सकेंगे।"

"हाँ, नीरजा!" सखीचन्द कह रहा था, "पर हमारे सूरमाओं में बड़े-बड़े तैराक भी हैं, नीरजा! वे हर तूफ़ान का सामना कर सकते हैं। यहाँ की लड़कियाँ भी तैरना जानती हैं। तुम सतलज को बड़े क्रोध की अवस्था में देख रही हो, नहीं तो तुमने इसे बेहद पसन्द किया होता। यहाँ की लड़कियाँ तैरते-तैरते

उस पार जा पहुँचती हैं। उस समय उनके एक हाथ में सरसों के साग के छन्ने पर रखी हुई मकई की रोटियाँ खद्दर के परने में लिपटी हुई होती हैं। क्या मजाल कि तैरने के दौरान में पानी का छींटा भी उन रोटियों पर आ गिरे। तुम यहाँ रहो तो तुम भी तैरना सीख जाओ। जब सतलज मेहरबान होता है तो बेहद मेहरबान होता है। मुझे इसका भयानक क्रोध देख कर इसकी मेहरबानियाँ नहीं भूल सकतीं। अच्छे दिनों में तुम सतलज के किनारे आ बैठो तो उसकी लहरें तुम्हारे साथ बातें करेंगी, वे तुम्हें तैरने का निमंत्रण देंगी।"

"देखो पीर अभी तक नहीं आया, मखीचन्द ! ये सूरमा तैराक दीवार बनाकर खड़े हो जायँ और बढ़ते हुए तूफ़ान को बढ़ने से रोक लें, यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है। लेकिन इसमें पीर क्या करेगा ?"

एक लम्बी वर्षा के पश्चात् सूर्य बराबर चमक रहा था। जैसे सूर्य की किरणें भी कह रही हों—अभी बादल फिर घिर आयेंगे और फिर होगी वही मूसलाधार वर्षा, जो किसी के थामे न थमेगी, और इसमें पीर क्या करेगा ? मखीचन्द ने बात का रुख सतलज की मेहरबानियों की ओर पलटते हुए कहा—"यह भी हो सकता है नीरजा, कि सतलज को फिर से याद आ जाय कि हम उसी की सन्तान हैं।"

पीर अभी तक नहीं पहुँचा था और पानी का ज़ोर पहले से बहुत बढ़ गया था। बड़े-बूढ़े बराबर प्रार्थना के लिये हाथ उठाये खड़े थे। "या ख्वाजा खिज़र!" हजूम में से एक बूढ़ी लड़खड़ाती हुई आवाज सुनाई दी और फिर सैकड़ों आवाजें मिलकर दुआ माँगने लगीं—"या ख्वाजा खिज़र !" सब लोग मिलकर खुले पानियों के एकाकी पथ-प्रदर्शक ख्वाजा खिज़र को पुकार रहे थे और यह असंभव था कि ख्वाजा खिज़र इतने लोगों की

ामूहिक प्रार्थना को ठुकरा दे।

सखीचन्द ने नीरजा से कहा—"पीर अब आये न आये, ोर का काम अब लोग स्वयं करेंगे। उन्हें अपनी ताक़त पर भरोसा है, ख्वाजा खिज़र के इन्साफ़ पर विश्वास है।"

उधर से बाबा नीरजा के समीप आकर बोला—"तूफ़ान अब थमा कि थमा। अब मत घबराओ।"

और बहरे बाबा के कान के समीप मुँह ले जाकर नीरजा ने ऊँची आवाज़ से कहा—"हाँ, बाबा!"

बाबा ने ललचाई हुई निगाहों से नीरजा की ओर देखा। सखीचन्द को यों महसूस हुआ जैसे बाबा का सुदूर यौवन सिमट कर समीप आ गया हो और जैसे सुदूर अतीत भी वर्तमान में बदल गया हो और जैसे सिकन्दर का आक्रमण खास इसी शताब्दी की घटना हो। वह गहन विचारधारा में खो गया..........एकान्त और शान्ति के वातावरण में कोई युवक धीमे स्वरों में कह रहा था—हाँ तो तुम्हारी माँ सच कहती थी। क्या कहती थी वह? यही ना कि बेटी तेरा दूल्हा घोड़े पर सवार होकर आयगा। मैं आ गया। मुझे देख लो। मुझे पसन्द कर लो। मेरी दुलहन बन कर तुम्हें घाटा न रहेगा.......और फिर खामोशी को चीरती हुई एक छोकरी की आवाज़ आई—हाँ, मेरे राजा, मैं तुम्हारी दुलहन हूँ। *भाग मत जाना।* यह न हो कि लोरियाँ देते हुए मैं अपने बच्चे के सम्मुख उमर भर उसके परदेशी पिता की शिकायत करती रहूँ...............

सखीचन्द को महसूस हुआ कि यह आखिरी आवाज उसकी अपनी माँ की आवाज थी। उसे वह फबती याद आई जो तीर्थ हमेशा उस पर कसा करता था—'सिकन्दर का बेटा!' उस समय दर्पण सामने होता तो उसे अपने चेहरे की रेखाओं पर यूनानी

प्रभाव का अधिपत्य नज़र आता। तीर्थ की फबती उसे बहुत बड़ा सत्य मालूम होने लगी। लाख कोई कहे कि सिकन्दर की गाथा बहुत पहले की है। अगर आज भी कपूर साहब ढाके बंगाले की दुलहन प्राप्त कर सकते हैं तो भला सिकन्दर ही सतलज पार के गाँव में क्यों ब्याह नहीं रचा सकता था। तीर्थ सच कहता था—'सिकन्दर का बेटा, सिकन्दर का बेटा।' तूफानी लहरों के उस पार वह टीकरा था, जहाँ खड़े होकर सिकन्दर ने अपने सूरमा घुड़सवारों को संसार पर विजय पाने के आदर्श की पूर्ति के लिये आगे ही आगे बढ़ते चले जाने की प्रेरणा दी थी। पर इस गाँव में आकर वह स्वयं हार गया। एक लड़की के सम्मुख। और आज सिकन्दर का बेटा भी तो अपनी हार मान रहा था नीरजा के सम्मुख, जिसने अभी तक उसे स्वीकार नहीं किया था। उसके विचार नीरजा को हमेशा दोग़ले मालूम होते और यह सिकन्दर का बेटा झुँझला कर कह उठता—हमारी मानवता, हमारी संस्कृति, हमारी कला, आज कुछ भी तो दोग़लापन से बचा हुआ नहीं है, नीरजा!

पीर आ पहुँचा और हजूम का शोर ऊँचे-से-ऊँचा होता गया। बूढ़े पीर पर लोगों की आशाएँ केन्द्रित हो गई। वे यह भी भूल गये कि पीर किस तरह दुआ माँगेगा और कौन-कौन से नये और पुराने टोने काम में लायगा। उन्हें बस एक ही ख्याल था कि तूफ़ान अब और नहीं बढ़ सकता और सबके देखते-देखते पानी पीछे हट जायगा। बाबा अपनी बूढ़ी आवाज़ से चिल्लाया—"सब परे हट जाओ। पीर को दुआ माँगने दो। पचास साल से तो मैं सतलज को पीर के हुक्म में बँधा हुआ देख रहा हूँ।"

"पीर को सतलज का मंत्र याद है," एक बुढ़िया ब्राह्मणी कह रही थी—"धन्य हो, सतलज देवता! तुम्हारी शक्ति

अपरम्पार है ।"

रोते हुये बच्चे चुप हो गये। बड़े-बूढ़ों ने इतमीनान का साँस लिया। अब उन्हें पत्थर की मूर्तियों के समान दुआ के लिये हाथ उठाये खड़े रखने की आवश्यकता न थी। कुँवारियाँ और युवक पीर का जादू देखने के लिये उत्सुक थे।

पीर ख़ामोश था। अभी तक उसके ओंठ न हिले थे। शायद वह अपनी सारी शक्ति किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित कर रहा था। यह उसकी परीक्षा थी—उसकी दुआओं की परीक्षा। या शायद वह कोई भूला हुआ दांव याद कर रहा था। उसे सच्चे सांई पर एतक़ाद था।

पहले बड़े-बूढ़ों ने पीर के पैर चूमे, फिर अधेड़ उमर के लोगों ने, फिर युवकों ने। और अब कुँवारियाँ बारी-बारी से पीर के पैर चूम रही थीं।

नीरजा को यों हजूम से हट कर तमाशा देखना अरुचिकर प्रतीत हो रहा था। सखीचन्द का कंधा झझोड़कर बोली—"चलो चलकर पीर को मंत्र पढ़ते देखें, सखीचन्द ! ज़रा चलने से पैरों में रक्त भी चलने लगेगा।"

ज्यों ही वह हजूम के समीप पहुँचे, उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पानी पहले के समान बढ़ा चला आता है। बड़े इतमीनान से वे पीर के जादू की प्रतीक्षा करने लगे। हजूम के शोर से कुछ आवाजें उभरती दिखाई दीं, कुछ मर्दानी, कुछ जनानी—

"रात भर में बिशने का खेत कट गया।"

"तूफ़ान हट भी जाय तो वहां अब रेत ही रेत होगी।"

"अब पीर का टोना रेत को कैसे ठीक कर सकता है?"

"इतना थोड़ा है कि पीर डूबते गाँव को बचा ले।"

"पीर तो गाँव भर का बाप है।"

"हाँ बहन, सतलज पीर की बात नहीं टाल सकता।"

"पीर नाराज भी होगा तो हमेशा के लिए नाता तोड़ने से रहा।"

"पीर का सदक़ा मेरी बारीक-बारीक मेढियों को। रब्ब खैर करे। सतलुज पीछे हट जाय।"

"दूध पूत पर पीर की नजर।"

"पीर रेत को छू दे तो सोना हो जाय, पानी को छू दे तो दूध हो जाय।"

पीर ख़ामोश था। बाबा भी उसके समीप खड़ा था। नीरजा को अपने समीप पाकर बाबा ने फिर बूढ़ी आवाज का प्रदर्शन किया—"पचास साल से तो मैं सतलज को पीर के हुक्म में बँधा हुआ देख रहा हूँ।"

सखीचन्द को बाबा की आवाज पर झुँझलाहट महसूस हुई। नीरजा के कान के समीप मुँह ले जाकर उसने पूछा—"क्यों नीरजा यहाँ अच्छा लगता है या फिर हुजूम से हट कर खड़े होना पसन्द करोगी? मुझे तो यहाँ मतली हो रही है और इस शोर में मेरे कान अलग फटे जा रहे हैं।"

"ख़्वाजा ख़िजिर के पैर किसी कन्या ने चूमें हों या नहीं," नीरजा कह रही थी, "पर पीर के पैर तो ये सब कन्यायें चूम रही हैं। बाबा को देखो, वह भी शायद पीर के साथ मंत्र पढ़ेगा।"

"बाबा की क्या बात है, नीरजा! अनगिनत शताब्दियों से वह पीर के साथ मंत्र पढ़ता आया है। पर उस समय कहाँ था उसका मंत्र, जब सिकन्दर ने आक्रमण किया था? तब पीर की भी पेश न चली थी।"

नीरजा बोली—"पीर के पैर चूमने की परम्परा बहुत पुरानी है। सखीचन्द!—सिकन्दर से भी पुरानी। और ख़्वाजा ख़िजिर पुराने युगों का जल देवता मालूम होता है।"

अतीत की बरफ के समान जमी हुई परम्परा पर मुझे क्रोध

आ रहा है," सखीचन्द ने शह दी, "लाख कोई कहे कि जल देवता की पूजा दोग़लेपन से बची हुई है, मेरा दिमाग़ इन जनूनी लोगों के समान कभी इसे स्वीकार नहीं कर सकता !"

नीरजा की उँगलियाँ बार-बार जूड़े की ओर उठ जातीं, पंजाबी हाथ ऐसा जूड़ा न गूँथ सकते थे। यह तो बंगाली हाथों का काम था। यह जूड़ा ही सखीचन्द को उसके समीप लाया था और सखीचन्द का यह ख़याल कि पंजाबी युवती के सिर पर बारीक मेंढियों का बारीक़ जाल यूनानी आँखों को भी पसंद आया होगा, उसे सिरे से बेसिर पैर की गप्प नज़र आने लगी।

समीप ही एक युवती नीरजा को घूर घूर कर देख रही थी। जैसे वह हैरान हो कि विचित्र जूड़े वाली लड़की पीर के पैर क्यों नहीं चूमती और दुआ क्यों नहीं माँगती। पीर का सदक़ा मेरे जूड़े को, रब्ब ख़ैर करे, सतलज पीछे हट जाय।

पानी की सतह नीची थी। तूफानी लहरें पहले किनारे की बुनियादें खोखली कर देतीं, फिर जब बड़ा सा तोदा गिर जाता तो उनका आक्रमण आरम्भ हो जाता।

लोगों को बराबर अपने बूढ़े पीर पर विश्वास था। बच्चे, बूढ़े, जवान—सब शोर मचा रहे थे। जैसे यह शोर भी पीर के टोने का अंग हो। पर पीर आगे बढ़ने से झिझकता था। शायद उसे अपनी ताक़त पर भरोसा नहीं रहा था। जब से वह आया था, किनारे से कई तोदे गिरकर पानी में डूब गये थे।

बड़े-बूढ़ों ने एक बार फिर प्रार्थना के लिए हाथ उठा लिये। बच्चों ने फिर से हुल्लड़ मचाना शुरू कर दिया। अधेड़ उमर के लोग बच्चों को चुप कराने के बहाने खुद भी इस हुल्लड़ में हिस्सा ले रहे थे।

सबसे अधिक संकट बनियों को अनुभव हो रहा था और

बाबा उन्हें समझा रहा था—"अब गांव को कोई खतरा नहीं है। बस देखते जाओ। सतलुज बेचारे की क्या मजाल कि पीर की हुकम उदूली करे। पचास साल से तो मैं सतलज को पीर के हुकम में बँधा हुआ देख रहा हूँ।"

पीर अब दुआ माँग रहा था। वही सतलज था, वही पीर! बाबा हैरान था कि आज हो क्या गया। आज सवेरे किसका मुँह देखा होगा पीर ने आँख खुलने पर? कलियुग है कलियुग। इन्साफ चला गया। झूठ ने पैर फैला लिये। पीर की दुआ में भी ताकत नहीं रही।

देखते ही देखते कई तोदे गिर गये और उनसे गुस्ताख लहरें टकरा रही थीं। पीर भी हैरान था। पर वह बारबार दुआ पढ़ रहा था। उसे यकीन था कि सतलज को हटना पड़ेगा। धीरे-धीरे वह किनारे के समीप सरक रहा था।

सर्वाचन्द ने नीरजा को झंझोड़ते हुए कहा—"नीरजा! नीरजा! तूफान तो आते ही रहेंगे। उन पर किसी पीर का हुक्म नहीं चल सकता—नदियों के तूफान, सभ्यता और संस्कृति के तूफान! सतलज को तो तुमने देख ही लिया। अब और क्या चाहिये?—चलो अब यहाँ से चलें।"

उधर हजूम का शोर कानों के परदे फाड़ रहा था, क्योंकि एक ओर तोदा पानी की नजर हो गया था और उसके साथ ही बिफरे हुए सतलज की बिफरी हुई लहरें बूढ़े पीर को उस हजूम, उस गाँव, उस शोर और कोलाहल से दूर बहाये लिए जा रही थीं।

पुल

दुलहन की सिसकियाँ बेइख़्तियार चीख़ों में बदल गईं तो ढोलों की दड़-दगड़-दगड़ भी झट धम-धम धमाधम-धम की उठान तक जा पहुँची और शहनाइयों का थर्राता हुआ गान अन्तिम उड़ान की कला दिखाने लगा। 'गलियां तंग होइयां बाबुल भीड़ियां........'—स्त्रियां दुलहन की ओर से आंसुओं से भीगे हुए गीत गा रही थीं। ये गीत ग्राम के वातावरण में नई लहरें पैदा कर रहे थे। बाबुल, मेरे लिए मायके की गलियां तंग हो गईं, आँगन परदेस हो गया। सुनो तो सही, पिताजी, हर किसी के मन में चाव है, पर मेरा दिल तो आंसुओं की नदी बना जा रहा है।

डोली उठने का समय समीप था। ये ढोल, ये शहनाइयां और डोली के गीत तो जरूरी थे। इनके बिना डोली कैसे उठ सकती थी? पर मालूम होता था दुल्हन की मिन्नत-समाजत बेकार है। यह सच था कि उसने कभी मां की शान में गुस्ताखी नहीं की। पर अब इस दलील से वह मां को डोली रोकने के लिए रज़ामन्द करा ले, यह असम्भव था।

अन्धी नाजो डोली के अन्दर सिर डाले खड़ी थी। मां ने उसका कन्धा झटकते हुए कहा—"इधर आ जा, नाजो! अब डोली चलेगी।" पर वह बराबर दुलहन की मेढ़ियों को सहलाती रही।

सुहाग-पिटारी उठाये नाइन सोच रही थी—सात कोस का सफर अब पैदल ही तय करना होगा, बैलगाड़ी का इन्तज़ाम हो जाता तो मैं दुलहन के साथ ही बैठ जाती। दुलहन की चीखों का उस पर कोई असर न हुआ। लोग चाहते हैं कि दुलहन रोये और दुलहन रो रही है। ग्राम से निकलते ही उसके आँसू थम जायँगे। ससुराल पहुँच कर वह मायके को भूल जायगी। हर लड़की यों ही करती है। पहले रोती है, फिर हँसती है। जी चाहता है सुहाग-पिटारी रख कर परे हट जाऊँ और डोली के साथ पैदल चलने से इन्कार कर दूँ।

दुहलन चाहती थी अभी डोली न उठे और नाजो बहन थोड़ा और गले मिल ले। बल्कि वह तो चाहती थी कि बरात वाले उसकी बजाय नाजो को ले जायँ। नाजो मेंहदी के इत्र का फ़ूहा लेती आई थी और बड़े चाव से उसने उसकी मेढ़ियों पर मल दिया था ताकि रास्ते भर खुशबू आती रहे।

दुहलन की मां की आँखों में आँसू थे और आवाज़ में वेदना थी। डोली के गीत तो सुहाग के मंत्र थे। उसे बधाई पर बधाई मिल रही थी। एक बार फिर उसने नाजो का कन्धा झटक कर कहा—"बहुत हो लिया मिलाप, नाजो!" और फिर वह गाने वालियों के साथ स्वर में स्वर मिला कर डोली के गीत गाने लगी।

नाजो कह रही थी—"अब मैं चांद-सितारों की बातें किसे सुनाऊंगी? मैं तो हमेशा तुझे अपनी आँखें समझती रही। आज मैं अन्धी हो गई।"

इशारा पाते ही कहार आगे बढ़े। मां ने नाजो की बाँह थाम ली और कहा—"नाजो तू मेरे पास रहेगी।"

मां ने दुल्हन के सिर पर हाथ फेरा और कहारों ने डोली उठा ली। थोड़ी दूर तक स्त्रियां और लड़कियां डोली के पीछे-पीछे गईं। लेकिन डोली के साथ केवल नाइन ही गई। अब तो ढोलिये और शहनाइयों वाले भी ग्राम को लौट जाना चाहते थे।

डोली जा रही थी। आगे-आगे दूल्हा और उसके यार-दोस्त, पीछे-पीछे नाइन और उसके पीछे बीस-पच्चीस बराती और दूल्हा का बाप—सब पैदल चल रहे थे।

दुलहन डोली की दीवार के साथ टेक लगाकर बैठ गई और हचकोले लेने लगी। अभी तक रतजगों का खुमार उसके दिल और दिमाग़ पर छाया हुआ था। ढोलों की धम-धमधमा-धम-धम अभी तक उसके मन में गूँज रही थी और शहनाइयों की पुकार भी जैसे उसके मन पर बराबर दस्तक दे रही हो। ढोल और शहनाइयाँ न बजें तो बहुत-सी लड़कियाँ ब्याह कराने से इन्कार कर दें। यह सोचकर उसने ढोलों और शहनाइयों की आवाज को मन स निकालने की कोशिश शुरू करदी।

दस-बारह रातों की निद्रा हीनता और अब हचकोले पर हचकोले। सीधे हो कर तो यह लोग चल ही नहीं सकते। उमस के मारे वह बहुत परेशान थी। उसे मतली-सी होने लगी। बड़ी बहन कुँवारी रह जाय और छोटी बहन का ब्याह हो जाय, यह घोर अन्याय है। वह चाहती थी कि डोली से कूद पड़े। उसका बस चलता तो इन लोगों की कैद से आज़ाद हो जाती। उसे मेंहदी के इत्र पर भी बुरी तरह गुस्सा आ रहा था। मुझे नहीं चाहिए यह खुशबू। नाजो सच कह रही थी। आज वह अन्धी हो गई। वह मुझे अपनी आँखें समझती रही। अब वह

कैसे देखेगी ? वह चाहती थी कि ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाये और नाइन से कहे कि वह उसे वापिस ले जाय। किसी तरह बरात वाले उसे छोड़ सकते तो हमेशा के लिये वह कुँवारी रहना स्वीकार कर लेती।

वह चाहती थी कि नथ उतार फेंके। इस बुलाक़ की भी क्या ज़रूरत ? न माथे का झूमर, न कानों की बालियाँ, न गले का चन्दन हार—उसे किसी चीज़ की ज़रूरत न थी। उसे अपने शृंगार से नफ़रत थी। लाल सलवार, कमीज़ और सिर पर लाल सालू—यह कैसा भेष है ?

काश ! इन्हीं शहनाइयों के साथ नाजो का भी ब्याह हो जाता। बरात में इतने लड़के आये थे। क्या किसी को नाजो से ब्याह करना मंजूर न था ? नाजो को शहनाइयाँ पसन्द हैं। अब उसके लिये कौन शहनाइयाँ बजायगा ? न जाने उसका ब्याह कभी होगा भी या नहीं ? उसका दूल्हा कहाँ से आयगा ? वह चाँद और तारों की बातें ले बैठती है। मालूम होता है वह चाँद और तारों को देख सकती है। अब चाँद और तारों की बातें उससे कौन सुनेगा ?

तीन कहार युवक थे और एक बहुत बूढ़ा। युवक कहार तेज़-तेज़ कदम उठाने लगते तो बूढ़े के लिए मुश्किल पैदा हो जाती। रास्ता रेतीला था। हर किसी के पैर रेत में धँस जाते थे। बरात कुछ पीछे रह गई थी। और दूल्हा अपने यार-दोस्तों के साथ ज़रा आगे निकल गया था।

"बड़े कठिन दिन हैं", बूढ़ा कहार बोला, "यह मँहगाई काटे नहीं कटती।"

"सस्ताई हो चाहे मँहगाई," एक युवक कहार ने शह दी, "लड़कीवाले लड़की को घर में कब तक बिठा सकते हैं ?"

"हमारी कोई नहीं सुनता", दूसरा कहार बोला, "ये अमीर

तो फिर भी गुज़र कर लेते हैं"।

"पंचायत ने हमारा नेग नहीं बढ़ाया," तीसरा युवक कह उठा, "इतने कम पैसों पर अब कौन डोली उठाय ?"

"यही हालत रही तो डोली कहीं नज़र नहीं आयगी," बूढ़ा कहार भविष्यवाणी के अन्दाज़ में बोला, "बस अब डोली चन्द हो दिनों की मेहमान है।"

दुलहन को यों महसूस हुआ कि कहार डोली रखकर खड़े हो जायँगे। इतनी उमस। बाप रे! चलो इसी बहाने पीपल या बड़ के नीचे दम लेने का मौका मिल जायगा। लेकिन कहार बराबर चलते रहे। इन लोगों का नेग हमेशा यही रहेगा, दुलहन सोच रही थी, अपने हक़ के लिये लड़ने-झगड़ने की हिम्मत इनमें कहाँ है ?

नाजो के लिए सब शहनाई वाले मर गये। तो क्या नाजो उमर भर कुँवारी रहेगी ? हे भगवान! यह तेरा क्या न्याय है ? तो तुमने जन्म ही से उसकी आँखें क्यों छीन लीं ? आवाज़ ऐसी कि उसके सामने पायल की छनन-छनन भी मात हो जाय। नाच में तो वह आँखोंवालियों से भी बाज़ी ले जाती है। खूब बन-ठन कर घूँघट काढ़े बैठ जाय तो शायद कोई शहज़ादा भी उसे अपनी दुलहन बना ले। तो क्या अब उसका ब्याह न होगा ? इसके बाल एड़ियों को छूते हैं। नाचती है तो ऐसे कि कोई कूँज पंख तोल रही हो। काश! मेरी आँखें सचमुच उसके चेहरे पर लग जातीं! फिर मैं देखती कि उसके लिए कौन-कौन तरसता है। लेकिन मैं कैसे देखती ? मेरी आँखें तो नाजो के चेहरे पर लग जातीं।

उसे याद था कि एक बार नाजो ने कहा था—मैं कब अंधी हूँ ? उम्र भर मुझ से चाँद और तारों की बातें सुनती रहो, मेरी बातें कभी ख़त्म नहीं हो सकतीं।

पूरब की एक लड़की के कहकहे उसके मन में झांझ की तरह गूँज उठे। नाजो उसके साथ स्वर में स्वर मिला कर गा उठती और वह पूरब की लड़की हँस कर लोट-पोट हो जाती—अरी नाजो! तू मेरी पिछले जन्म की बहन है। दोनों मिल कर नाचने लगतीं और गातीं—

पंजाब देस री ननदी
बड़ा दूर दूर दूर
पंजाब देस के छोरे
बरसे नूर नूर नूर

उसे खुशी थी कि दूल्हा की आंखों से नूर बरसता है। लेकिन जैसे छींक आते-आते पलट जाय, उसकी तबियत फिर परेशान हो गई। जैसे उसने नाजो से उसका दूल्हा छीन लिया है।

अब तो तेज हवा चल पड़ी थी। डोली का परदा फड़फड़ा रहा था। डोली आगे ही आगे चली जा रही थी। उसने सोचा कि नाइन से बात करे। लेकिन वह खामोश बैठी रही। यह तो नाइन का फर्ज़ है कि मुझसे पूछे—किसी चीज़ की जरूरत तो नहीं? आखिर वह मेरे साथ क्यों आई है? पैदल चलना पड़ गया तो जल-भुन कर रह गई। ले दे कर कुल सात कोस का तो सफ़र है। दो और तीन पांच और दो सात कोस का सफ़र है। अब अगर मैं उसे आवाज़ भी दूं तो वह सुनी अन-सुनी कर देगी। यह एक पहेली है जिसे मैं नहीं बूझ सकती। क्या अब वह रास्ते भर मुझसे बात नहीं करेगी?

उसने आइने में अपना चेहरा देखा। अरे, अरे! मेरा चेहरा तो लाल हो रहा है और मेरी शरबती आंखें शरमीली-सी नज़र आती हैं, जैसे उन्होंने कोई जुर्म किया हो।

हवा बराबर डोली के पर्दे से अठखेलियां कर रही थी उसने सोचा कि अब आसमान पर बादल घिर आयें तो मः

आ जाय। जब वह बचपन में मां से चुंबन मांगती तो हमेशा यही जवाब मिलता कि ब्याह पर मूसलाधार मेंह बरसेगा। पर उसे तो इसकी कुछ परवाह ही न थी। हैरानी से वह आसमान की तरफ़ देखती रही जहां बादलों का कुछ पता न चल सकता था। आजकल मूसलाधार मेंह तो बरस ही नहीं सकता। बूंदा-बांदी हो जाय, वही ग़नीमत है। ऐसी ही जिसके बारे में कहा करते हैं कि भैंस का एक सींग भीगा हुआ और एक सिरे से खुश्क। वह टिकटिकी बांधे क्षितिज की ओर देखती रही।

"कहार सोने में ढला हुआ भी क्यों न हो" बूढ़ा कहार बोला, "उसके कन्धे ज़रूर पीतल के होने चाहियें।"

"बुढ़ापे में तो पीतल भी सोना बन जाता है," एक युवक कहार ने फबती कसी, "अब यह काम छोड़ो। तुम बोझ नहीं ढो सकते।"

"बाबा को यों ही साथ ले लिया," दूसरा बोला, "डोली का बोझ तो हम तीनों के कंधों पर है।"

"हां, हां," तीसरा कहार कह उठा, "हम अपने 'नेग' में से बाबा को बराबर का हिस्सा कैसे दे सकते हैं?"

"तुम मुझे कुछ भी न देना," बाबा बोला, "बस मुझे डोली उठाने से रोको मत।"

"रोकता कौन है, बाबा?" पहला युवक कह उठा, "तेज़-तेज़ क़दम उठाओ।"

"क्यों डोली उठाने में कुछ मज़ा आता है, बाबा?" दूसरे युवक ने बढ़ावा दिया, "डोलियां उठाते मन नहीं भरा?"

"यह सब पेट का धन्धा है," तीसरे युवक ने हाशिया चढ़ाया, "एक रोटी सौ-सौ गुलामियाँ कराती है।"

"रोटी भी ज़रूरी है," बाबा बोला, "पर खाली रोटी के लिए ही मैं डोली नहीं उठाता। काम का मज़ा भी तो होता है।"

दुलहन खुश थी कि बाबा को उसकी डोली उठाते हुए मजा आ रहा है। उसे मालूम था कि बाबा अफ़ीमची हैं। अब मालूम हुआ कि अफ़ीम ही की तरह उसे डोली उठाने का नशा है। सब पेट का धन्धा है। यह लोग सच कहते हैं। एक रोटी सौ-सौ गुलामियां कराती है। ये लोग समझते होंगे कि मैं शहज़ादी हूं—डोली की दुलहन। पर मैं भी गुलाम हूँ। मुझे इनसे हमदर्दी है। इन्हें भी मुझसे हमदर्दी होनी चाहिए।

क्या ब्याह ज़रूरी है? डोली में बैठ कर ससुराल पहुँचे बिना क्या ब्याह नहीं हो सकता? उसी समय उसकी कल्पना में वह गीत गूँज उठा जिसमें एक लड़की कहती है—मैंने तुमसे कहा था न बाबुल कि मेरा ब्याह आश्विन में करना जिससे कोठरी में पड़े-पड़े पकवानों से सड़ांद न उठने लगे और दही भी खटास न पकड़ सके......अरे, अरे! मेरे सपने तो बुलबुले हैं। अभी कल की बात है कि मैं पानी में साबुन घोल कर गेहूँ की तीली से फूंक मार-मार कर बुलबुले उड़ाया करती थी। इन बुलबुलों के रंग सूरज की रोशनी में कितने भले लगते हैं। पर बुलबुलों की उमर ही क्या?......ब्याह की इतनी फ़िक्र?... हाँ मेरी बन्नो, तेरा ब्याह आश्विन ही में करेंगे। पकवानों से सड़ांद नहीं उठेगी। दही खटास नहीं पकड़ सकेगा...... वह लड़की सच कहती थी जिसने अपने बाप से कहा था—मुझे कुँवारी ही रखलो, तुम गेहूँ के खेतों में सिंचाई किया करोगे तो मैं तुम्हारा हाथ बटाया करूँगी। लेकिन हमेशा मायके में ही रहने की शर्त भी तो फिज़ूल है......मैं तो उमर भर मायके में रहना कभी पसन्द न करूँगी।

एक बार फिर बड़ी तेजी से उसे नाजो का ध्यान आया। जैसे उसकी बरात पकवानों से सड़ांद महसूस करते ही उठ कर चली गई हो। दही ने भी तो खटास पकड़ ली थी। बराती यह

दही कैसे खा सकते थे? नाजो रद्द कर दी गई। वाह री नाजो, अब मौज कर। तेरे लिए मायके की गलियां कभी तंग नहीं हो सकतीं, आंगन परदेस नहीं हो सकता। अरे, अरे! उमर भर मायके में रहना भी तो कठिन है।

यह निगोड़ी मेंहदी के इत्र की खुशबू। नाजो भी पगली है। यों ही इत्र का फूहा लेती आई और मेरी मीढियों पर मल दिया। यह मेरी लाल सलवार कमीज। मुझे इनसे नफरत है। ये धारी के फूल बूटे। मेरा बस चलता तो यह कपड़े नाजो को पहना देती। ऊँह! नाजो तो अभागिन है। जात की छिपकली, शहतीरों से गलबहियाँ लेने का दावा। चाँद और तारों की बातें। ऊँह! उसने चाँद और तारे कब देखे हैं? चाँद और तारे तो उसको मुँह चिढ़ाते हैं।

ममिया-ममिया कर नाजो कहती है—सात तारों से परे एक तारा है। ऊँह! जैसे नाजो सचमुच तारे देख रही हो। सात छिपकलियों से परे एक छिपकली है जो शहतीरों से गलबइयाँ लेने का दावा करती है। आख-थू! जुगनू तो नजर नहीं आते, तारे देखने का दावा।

मैं दुलहन हूं। मेरे हाथ में आइना है। इस डोली में मुझसे खूबसूरत दुलहन सवार न हुई होगी। अरे, अरे! मैं खुद ही अपने हुस्न की तारीफ कर रही हूँ। दूल्हा ने मुझे अभी देखा भी नहीं। वह पूछेगा—कै बरस होगी तेरी उमर? मैं कहूँगी—सोलह बरस। झूठ थोड़े ही है। सोलह बरस की ही तो हूँ।

जैसे कोई लम्बा सपना देखते-देखते बिना कारण चौंक पड़े। यह कौन था जो मुझे गोफने में रख कर घुमा रहा था? अभी तक मेरा बचपन खत्म नहीं हुआ। चिल्लाते हुए ऊँट ही लादे जाते हैं। मेरी चीखों की किसी ने परवाह न की। मुझे डोली में सवार करा दिया। अब तो यह डोली मुझे मंजिल पर

ही छोड़ेगी। मेरे अंग-अंग में यह झुरझुरी-सी क्या दौड़ जाती है?

यह मेरी ठोढ़ी आज इतनी लम्बोतरी क्यों हो रही है? आइना तो धोखा नहीं दे सकता। और ये गालों में गढ़े-से क्यों हैं? अरे, अरे! ये तो अच्छे नहीं। हाय राम, मेरा चेहरा बदल क्यों रहा है? जी चाहता है आइने को चूम लूं। आइना नया है। लेकिन नये आइने के कारण ही तो मेरा चेहरा बदला हुआ नजर नहीं आ सकता।

क्या वेद मंत्र बहुत सच्चे होते हैं? यज्ञ की अग्नि इतनी पवित्र होती है? ये मेरे गालों पर घनी पलकें क्यों काँपने लगती हैं? यह सालू इतना लाल क्यों है? मुझे मंत्रों की परवाह नहीं, भले ही वे सालू की तरह लाल ही क्यों न हों, भले ही उनसे मेंहदी के इत्र की लपटें क्यों न आ रही हों।

मुझे यह मतली-सी क्या होने लगती है? इलायची मुँह में डाल कर देखूं। बस, बस, इलायची में भी गुण नहीं रहा। लवंग मुँह में डाल कर देखूं। आख-थू! लवंग भी मुझे अच्छा नहीं लगता। आज तो मैं नाजो के हाथ से भी लवंग स्वीकार न करूं।

जिन्दां के व्याह पर मोटर आई थी। मेरे व्याह पर बैल-गाड़ी भी नहीं आई। नाईन नाराज है। पैदल चलना पड़ गया तो जल-भुन गई। ऊँह! ले दे के सात कोस ही तो हैं। कभी पैदल भी चलना पड़ जाता है। वह सोचती होगी कि जहाँ व्याह पर इतना खर्च किया, वहाँ बैलगाड़ी पर कौन-से सैंकड़ों खर्च हो जाते। पगली! तो क्या सब काम नाईन से पूछ कर किये जायँ।

डोली के आगे-आगे चलता हुआ दूल्हा सोचता है कि बरात अब रास्ते में आराम नहीं कर सकती। वहाँ दुलहन का इन्तजार किया जा रहा होगा। गाँव की लड़कियाँ घूँघट उठा-उठा कर देखेंगी—अरे ऐसी दुलहन तो पहले इस गाँव आई नहीं। कोई

कहेगी—देवी है। कोई अप्सरा बतायगी। पहले घर की देहलीज़ पर तेल डाला जायगा, तब कहीं दुलहन घर के अन्दर जायगी।

दुलहन चाहती थी कि दूल्हा से बातें कर सके। अचानक उसकी कल्पना में वह गीत गूँज उठता है जो उस समय गाया जाता है जब चाँदनी रातों का नाच चर्म-सीमा पर होता है—

मैनू अज्ज दी रात न छेड़ीं,
मेंहदी वाले हाथ बन्हदी।

किसी ने अपने मेंहदी रचे हाथों का वास्ता देकर दूल्हा से सुहाग-रात स्थगित करने की प्रार्थना की थी। दुलहन ने झट मेंहदी रचे हाथों की ओर देखा। डोली का परदा पश्चिम से आने वाली हवा से फड़फड़ा रहा था। जैसे यह दुलहन के गुप्त भावों से परिचित हो। दुलहन को पर्दे की हर हरकत पर गुस्सा आ रहा था। यह हमेशा हवा के इशारों पर नाचता है, जैसे यह भी आज यही गीत गाना चाहता हो।

आईना सामने रखा था। दुलहन चाहती थी कि अपनी मींढ़ियां खोल डाले और किसी नाइन की मदद लिये बिना खुद ही अपने बाल संवार ले।

जिन्दां से भेंट हुए कई महीने हो गये। अब वह गाँव में क्यों नहीं आती? कोई सहेली विधवा हो गई। कोई पति के होते हुए विधवा से बुरी अवस्था में है। जिन्दां ही सबसे खुश-किस्मत है। घर-घर उसकी बातें होती हैं। मैं भी अपने पति को खुश रखूँगी।

सात कोस की मंज़िल इतनी भारी! घर की देहलीज़ पर कब पैर रखूंगी? नया दिया कब रोशन करूंगी? दूल्हा से कब बातें करूंगी?

खुश्क छिलकेदार नारियल से वह बच्चों की तरह खेलती रही। अरे, अरे! बादाम का छिलका कितना सख्त है,

नहीं। कागज़ी बादाम होते तो मैं अब तक खत्म कर चुकी होती। मिठाई भी पड़ी है। मैं कैसे खा सकती हूँ? ससुराल वाले क्या कहेंगे?

दूल्हा, अब घर पहुँच कर मुझसे बातें करेगा। इधर खेतों में अमरीकन कपास बोते हैं। बड़ी-बड़ी फुहियां रेशम की तरह मुलायम। देसी धरती, सुन्दर अमरीकन बीज। तो दूल्हा अब दुलहन से बातें क्यों नहीं करता? क्यों न मैं खुद ही उसे बुला लूँ? अब तो कभी ऐसा न होना चाहिये कि दुलहन रास्ते भर डोली में क़ैद रहे।

अरे, अरे! सिर पर सोने का चौंक[1] तो किसी मन्दिर का कलश मालूम होता है। यह नथ, यह बुलाक, यह माथे का झूमर, कानों में बालियों के गुच्छे! यह शृङ्गार तो बहुत अजीब मालूम होता है। माथे का झूमर ही काफ़ी न था? कहाँ है मेरा वह रूप? काश! दूल्हा ने एक महीना पहले मुझे खेतों में हिरनी की तरह चौकड़ियां भरते देखा होता। काश! मैं उसी रूप में आज भी दूल्हा के सामने खड़ी हो सकती।

गाँव की सीमा आ गई। कहारों ने पीपल के नीचे डोली र दी जहां गाँव की स्त्रियाँ पहले से दुलहन की बाट जोह रही थीं

डोली का परदा उठा-उठा कर लड़कियाँ दुलहन का रूप प रही थीं। दुलहन के शृङ्गार की प्रशंसा सुन कर रूठी हुई नाइन ओठों पर भी मुस्कान दौड़ गई।

तीनों युवक कहार परे बरात के समीप सरक गये।

बूढ़ा कहार डोली के समीप ही खड़ा रहा। वह थक कर हो चुका था। उसने अपने कंधों पर हाथ फेरा। उसके कंधे के न थे। वह सोच रहा था कि डोली भी एक पुल है। न

1. एक आभूषण जिसे पंजाबी में 'सग्गी' भी कहते हैं

यह पुल पहले-पहल किस कारीगर ने बनाया था। वह चाहता था कि वह कारीगर अभी मिल जाय। वह उस कारीगर के पैरों में गिर जाना चाहता था। उसने इधर-उधर देखा। वह कारीगर उसे कहीं नजर न आया। उसने घबरा कर फिर इधर-उधर देखा। फिर उसने सोचा कि न जाने अभी और कितनी दुलहनें इसी पुल से गुजर कर मायके से ससुराल पहुँचेंगी।

इस भीड़-भड़क्के और चहल-पहल में बूढ़े कहार की निगाहें डोली पर ही जमी रहीं, जो जमीन पर पड़ी थी और जो न जाने कब से उसके कन्धों का बोझ बनती आई थी।

एक भिक्षु की कहानी

चाँद की निखरी हुई चाँदनी में नदी के किनारे यह पगोडा महान् परम्पराओं का प्रतीक मालूम होता था। उसका शिखर किसी महापुरुष की आकाश की ओर उठी हुई उँगली की तरह यह घोषित करता प्रतीत होता था कि यही है सत्य का मार्ग और यही है ज्ञान की मंज़िल।

बौद्ध मंदिर की छाया में खड़े हुए भिक्षु ने यह दृश्य देखा। उसे ध्यान आया कि इसी तरह की एक चाँदनी रात थी जब भगवान् बुद्ध ने जन्म लिया था और वातावरण में एक महान् सन्देश गूंज उठा था—हे मरे हुए लोगों, जिन्हें दोबारा जन्म लेना है और हे जीवित लोगों, जिन्हें एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना है, उठकर खड़े हो जाओ। सुनो, संसार का मुक्तिदाता आ पहुँचा है। शान्ति का युग आ गया है।

भिक्षु की आँखें पगोडे के शिखर के साथ साथ आकाश की ओर उठ गईं। उसे विश्वास था कि इस पगोडे में इतनी शक्ति अवश्य है कि वह अनेक विपत्तियों से अपनी रक्षा कर सके। कई भूकम्प आये, कई बिजलियाँ गिरीं। पर यह पगोडा एक

वीर सैनिक की तरह अपने स्थान पर अटल खड़ा रहा। यह युद्ध! क्या इस तूफ़ान को यह पगोडा रोक सकेगा? बुद्ध ने कहा था—सदा न्याय की विजय होती है। क्या अब हमारी विजय न होगी? बुद्ध ने यह भी कहा था कि युद्ध में लाखों मनुष्यों पर विजय पाने वाले से वह व्यक्ति कहीं अधिक महान् है जो स्वयं अपने मन पर विजय पाता है। इसीलिए बुद्ध ने कहा था—मैं बुद्ध, जो कभी रो रोकर आँसू बहाता था, जिसका हृदय संसार के दुःखों से टूट गया था, आज हंसता हूँ खुश हूँ कि मानव को स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी है..........भिक्षु पूछना चाहता था कि क्या मानव की यह स्वतन्त्रता क़ायम रह सकेगी। आज एक देश, जो अपने को बौद्ध कहता है, दूसरे बौद्ध देश पर आक्रमण कर रहा है। क्या यह देखकर बुद्ध फिर न रोता होगा? बुद्ध ने यह भी तो कहा था—धरती सुन्दर है, पर इस पर बसने वाले औरों के जीवन के भूखे हैं; दूसरों को मारकर वे स्वयं जीवित रहना चाहते हैं.......... भिक्षु बहुत ज़ोर देकर कहना चाहता था कि आज भी धरती उसी संकट में फंसी हुई है।

भिक्षु का सिर झुक गया। सिर झुकाये वह बौद्ध मन्दिर में बुद्ध की मूर्ति के सामने जा बैठा। जैसे वह अपने देवता को जगाकर फिर वही शान्ति प्राप्त करना चाहता हो। उसकी कल्पना में एक साथ सैंकड़ों पगोडे उभरने लगे—टूटे-फूटे उदास पगोडे। काल के निर्दय हथौड़े ने इनके कंगूरे गिरा दिये थे उसे लोगों की प्रवृत्ति पर क्रोध आ रहा था। जो भी उठता नये पगोडे का निर्माण कराता है। पुराने पगोडे धीरे-धीरे मिट जा रहे हैं। कैसा अन्ध विश्वास है कि पुराने पगोडे मरम्मत से पुण्य नहीं मिलता। उसने बड़े ध्यान से बुद्ध आँखों में आँखें डालकर देखा जैसे भगवान् उसे ही आ

दे रहे हों कि वह दूर कहीं यह घोषणा कर दे कि पुराने पगोडे की मरम्मत कराने से भी भगवान् उतने ही खुश होते हैं।

सहसा बाहर के शोर ने भिक्षु को झंझोड़ा। बेढंगम तेज आवाजें प्रति पल बढ़ती चली जा रही थीं। उसे फिर युद्ध का ध्यान आ गया। शिकायत-भरी आंखों से उसने बुद्ध की ओर देखा—वह तेरा अनुयायी भी विचित्र व्यक्ति है, भगवान्! तेरे ही भक्तों पर वह बम बरसाता है, तोप में गोले भर-भर कर फेंकता है, हज़ारों मनुष्यों के जीवन को नष्ट करता है। अब ये बौद्ध मन्दिर और पगोडे भी कब सुरक्षित रह सकते हैं...........
उसे यों अनुभव हुआ जैसे बुद्ध के मुख पर एक नई भावना थिरक उठी हो। जैसे भगवान् कह रहे हों—बावरे भिक्षु, डरने की कौनसी बात है? यहां कोई बम नहीं गिरा सकता।

बाहर का शोर ऊँचे से ऊँचा होता गया। भिक्षु अपने स्थान से उठ कर खड़ा हो गया। बहुत से घबराये हुए लोग बौद्ध मन्दिर में घुस गये। जैसे उन्होंने मौत को देख लिया हो। बच्चे, बूढ़े, जवान—सब सहमे-सहमे नजर आते थे

भिक्षु की आँखें इस भीड़ की ओर उठीं और फिर एक बूढ़े के चेहरे पर जम गईं, जो इस समय उन सभी वेदनाओं का प्रतीक था जिन्होंने ज्ञान से पहले बुद्ध को झंझोड़ कर रख दिया था। फिर उसने बुद्ध की ओर देखकर कहा—"हे भगवान्! तेरे ये भक्त तेरे भक्तों से भागकर तेरी शरण में आये हैं और तेरा आश्रय चाहते हैं।"

"मांडले के आकाश पर हवाई जहाज मंडरा रहे थे," कोई बोला, "आज फिर बम बरसेंगे।"

"हमारी मौत समीप है।"

"मौत? मैं मौत से नहीं डरता।"

"शायद हम बच जाँय।"

"हां हां, हम बच जांयगे," एक बूढ़ी लड़खड़ाती आवाज़ ये की लौ की तरह ऊपर को लपकी, "हां, हम बच जांयगे। गवान् बुद्ध हमें बचा लेंगे। बौद्ध मन्दिर या पगोडे पर तो वे पी बम गिराने से रहे।"

भिक्षु ने बड़े ध्यान से इस झुकी हुई कमरवाली बुढ़िया की ओर देखा। उसकी आंखों में विश्वास की ज्योति चमक रही थी। उसे बुद्ध की शक्ति पर भरोसा था। बोला—"हां हां, भगवान् तुम्हें बचा लेंगे।"

बच्चों की चीख-पुकार, स्त्रियों की सहमी-सहमी आवाज़ें, युवकों की बहसा-बहसी, बूढ़ों की कानाफूसी—ये सब आवाज़ें किसी संगम की लहरों की तरह गले मिल रही थीं। भिक्षु ने बुद्ध की आंखों में आँखें डालकर कहा—"भगवान्! हमें बचाओ।"

एक बच्चा भिक्षु के चरणों में आकर गिरा। उसे पुचकारते हुए उसे अपने बचपन के दिन याद आ गये। पूरे बीस वर्ष से मैं बुद्ध भगवान् के दर्शन कर रहा हूँ। आज यह बच्चा भी मर जायगा और मैं भी मर जाऊंगा। मैं, जो बच्चे से बूढ़ा हो चुका हूँ, और यह बच्चा.........देर तक वह बच्चे के सिर पर हाथ फेरता रहा।

एक सप्ताह से किसी बमवर्षक ने मांडले की ओर रुख नहीं किया था। आज सवेरे तक किसी को गुमान भी न था कि मांडले पर बम बरसाये जांयगे। वह इन्हीं विचारों में बहा जा रहा था कि बच्चे की माँ दौड़ी-दौड़ी आई और बच्चे को लेकर एक ओर सरक गई।

भिक्षु ने उस स्त्री की ओर देखा और सोचा—आज यह भी मर जायगी और इसका बच्चा भी। ऐसी ही स्त्री ने भगवान

बुद्ध को जन्म दिया था। मौत ने तो न भगवान् की माता का लिहाज़ किया था न भगवान् का। पर भगवान् तो सदैव जीवित रहते हैं और उनके उपदेश अज्ञान के अन्धकार में अमर ज्योति बनकर चमकते हैं। हे भगवान्! अपने भक्तों को बचा लो, अपने भक्तों के बमों से अपने भक्तों को बचा लो।

बुद्ध की आँखों में शान्ति थी। भिक्षु को विश्वास था कि बौद्ध मन्दिर और पगोडे पर बम नहीं बरसाये जा सकते। वह लोगों से कहना चाहता था—डरो नहीं, बुद्ध के भक्तों! समझ लो कि तुम बच गये।

एक क्षण के लिए भिक्षु को यों अनुभव हुआ जैसे धरती घूम कर आकाश बन गई हो और आकाश धरती के स्थान पर आ गया हो। एक बम कहीं समीप ही गिरा था।

"बच गये सो बच गये," किसी ने अपने साथी के कन्धे पर हाथ रख कर कहा, "मर गये सो मर गये।"

"भगवान् बुद्ध के चरणों में मरने से लाभ ही लाभ है। यही तो निर्वाण का मार्ग है।"

"अभी तो मैं जीवित रहना चाहता हूँ।"

"पर मौत से कौन कुश्ती लड़ सकता है।"

"यह हमारी अन्तिम भेंट है।"

'हां, अन्तिम भेंट—एक मुस्कान और फिर मौत।"

"भेड़ों के झुंड पर जैसे बिजली गिरती है, ऐसे ही आज हमारे ऊपर बम बरसेंगे।"

"हम निर्बल हैं। हमें जीवित रहने का अधिकार नहीं।"

भीड़ के शोर ने भयानक रूप धारण कर लिया। दूर कहीं बम गिर रहे थे। भयानक आवाजें वातावरण में चीख रही थीं। बहुत से लोग मूक मूर्त्तियों के समान एक-दूसरे को देख रहे थे। एक लड़की के मुख पर मानो बरमा का पूरा नक़शा उभर

आया हो। भिक्षु ने सोचा अभी तो इसकी रेखाएँ और बिगड़ेंगी। अब मांडले पर भी शत्रु का अधिकार हो जायगा। लड़की की ओर से आँखें हटाते हुए भिक्षु ने चारों ओर देखा। वह चाहता था कि लड़की के कान में कहे—बरमा की पत नहीं उतर सकती, यहां शत्रु का अधिकार नहीं होगा।

एक बार फिर वातावरण में भयानक आवाज़ें गूंज उठीं। भीड़ में घबराहट फैल गई। भिक्षु की आँखें बुद्ध से पूछ रही थीं—क्यों भगवान्! यह क्या हो रहा है? क्या अब तेरे मन्दिर और पगोडे पर भी बम गिरेंगे?

सहसा कोई वस्तु भिक्षु के चेहरे से टकराई और रक्त से लथपथ आँखें झपझपाते हुए उसने देखा कि यह उस बच्चे का सिर है जिसे कुछ ही क्षण पहले वह स्त्री उसकी गोद से उठा ले गई थी।

भिक्षु ने भयानक आवाजों और गूंजों के बीच में इधर-उधर देखा। बीसियों मनुष्यों के सिर, टाँगें, बाज़ू, छोटे-बड़े हाथ, पुरुषों और स्त्रियों के धड़ हवा में उड़ रहे थे। इस भयानक दृश्य से घबरा कर उसने अपने इष्टदेव की ओर आँखें उठाईं। पर उसकी सहमी हुई नज़रें अपने भगवान् के चरणों से न लिपट सकीं। भगवान्! एक चीख़ के साथ उसने भगवान् के सिर को अपने सीने से लगा लिया।

: २ :

थके-मांदे फटे हाल वे चले जा रहे थे। उन्हें कुछ मालूम न था कि उनकी मंज़िल कहां है। जैसे उनके भाग्य में हमेशा के के लिए चलना ही लिखा हो। विनाश के दृश्य अभी तक उनकी आँखों के सामने घूम रहे थे। शरीर के वस्त्रों और छोटी-छोटी पोटलियों के सिवाय, जिनमें शायद भोजन की सामग्री थी,

उनके पास और कुछ न था।

इस रास्ते से पहले भी ऐसे कई काफिले गुजर चुके थे और यह रास्ता उन्हीं काफिलों का बनाया हुआ था। पहले कभी इन भयानक जंगलों और कठिन पहाड़ियों से यों इतने मनुष्य न गुजरे थे। गगनचुम्बी सागवानों के साथ-साथ उनकी निगाहें आकाश की ओर रेंगती हुई मालूम होती थीं। जैसे वे सृष्टि-निर्माता को उसकी सृष्टि से परिचित कराना चाहती हों। इन में एक ऐसा व्यक्ति भी था जिसकी आँखें झुकी हुई थीं। ऐसा मालूम होता था कि उसकी निगाहें आकाश की ओर देखते-देखते थक कर यह फैसला कर चुकी हैं कि ऊपर देखना व्यर्थ है। उसके फटे हुए पीले वस्त्रों से मालूम होता था कि वह किसी पगोडे का भिक्षु है। उसकी पीठ पर बेंत का बक्स बंधा हुआ था और वह इस काफिले के साथ चला जा रहा था।

उतरती-चढ़ती पगडंडी पर यह काफिला आगे ही आगे बढ़ रहा था। यह लोग कहाँ जायंगे? इस जंगल के उस पार दूसरे जंगल में, दूसरे जंगल के उस पार तीसरे जंगल में। हारे हुए सिपाहियों की तरह ये शरणार्थी किसी अनदेखी मंजिल की ओर जा रहे थे। अपने नगर की गलियों और बाजारों से दूर—क्षितिज के उस पार। कौन कह सकता था कि वे कब लौटेंगे, लौटेंगे भी या नहीं।

भिक्षु की शक्ति क्षीण हो रही थी। उसका मस्तिष्क उसकी आज्ञा मानने से इन्कार कर रहा था। उसकी अंतड़ियाँ भूखी थीं। पर वह इन लोगों से कैसे भिक्षा मांगता जिनके पास अपने लिये भी कुछ न था!

वह ज़रा परे सरक कर निर्वाण-मार्ग के मंत्र का जाप करने लगा—बुद्धम् शरणम् गच्छामि, धम्मम् शरणम् गच्छामि, संघ शरणम् गच्छामि.........फिर उसे संघ की असमर्थता के

ध्यान आया। हाँ, यह सब संघ की दुर्बलता है कि एक बौद्ध देश दूसरे बौद्ध देश पर धावा बोलता है। दोनों भगवान् का नाम लेते हैं—बुद्ध भगवान् का नाम। फिर यह युद्ध कैसा? इस बर्बरता का मतलब? आज बम बरसते हैं, तोपों से गोले छूटते हैं, दनादन गोलियां चलती हैं, धुआँ उठता है, शोले लपकते हैं। मुस्कराहटें, कहकहे, सुहाग, जीवन की प्रतिज्ञाएं—सब ख़त्म हो रही हैं। पिता का प्रेम, माँ की ममता—सब बमों के नीचे चूर-चूर हो रही हैं। और फिर अपने मन से बातें करने की बजाय वह क़ाफ़िले वालों की बातें सुनने लगा।

"न जाने मौत कहाँ से शुरू होती है!"

"इस पगडंडी पर से पहले भी विपता के मारे गुज़रे होंगे।"

कभी-कभी भिक्षु को अपना जीवन बुझे हुए अंगारे के समान ठंडा पड़ता महसूस होता। रात के सन्नाटे में चीखें सुनाई देतीं, जैसे भगवान् रो रहे हों।

कई दिन, कई रातें इसी तरह गुज़र गईं। कई संगी-साथी रास्ते ही में छूट गये। काफ़िला अपनी अनदेखी मंजिल की ओर जा रहा था। भिक्षु के मानसिक क्षितिज पर कुछ चक्र-से उभरने लगते—जीवन और मृत्यु के इन चक्रों में भगवान् का मुस्कराता हुआ चेहरा सहसा उदास हो उठता। अपने पीले वस्त्रों की ओर वह उचटती निगाहों से देखता। मैं भी किधर का भिक्षु हूँ? मेरी बीस वर्ष की तपस्या व्यर्थ चली गई। भगवान मुझ पर रुष्ट हैं। मुझे चाहिये था कि बम गिरने से पहले भगवान् के शरीर से चिमट जाता और उनका सिर उड़ने से पहले मेर शरीर खंड खंड हो चुका होता।

उसे बार-बार बौद्ध मन्दिर और पगोडे का ध्यान आ जात जहाँ उसने इतने वर्ष व्यतीत किये थे। मन्दिर का द्वार उसव

कल्पना में उभरने लगता। जैसे यह जीवन का द्वार हो। इसी द्वार से प्रवेश करने के पश्चात् भगवान् के दर्शन किये जा सकते थे। उस समय उसके उदास हृदय में प्रफुल्लता-सी आ जाती। जैसे मन्दिर से निकल कर भगवान् द्वार पर खड़े हो गये हों और उसे अपनी ओर बुला रहे हों। भगवान् के मुख पर मुस्कान खिल उठती और उसे ध्यान आता कि वह वापिस चला जाय और काफिले वालों को भी समझाये कि भगवान उन्हें बुला रहे हैं।

पर काफिले को तो आगे ही आगे चलना मंजूर था। वे कितनी दूर निकल आये थे—पगोडे से दूर—इरावदी से दूर। उसे उन गीतों का ध्यान आता जो ईरावती के मल्लाहों के ओठों पर थिरक उठते थे। इन गीतों में वे बुद्ध के गुण गाते थे। अब वे गीत कहाँ सुनने को मिलेंगे? यह सोचते हुए भिक्षु को अपने क़दम बोझिल महसूस होने लगते।

आगे ही आगे, कभी ऊपर कभी नीचे। यह काफिला चला जा रहा था। वस्त्र मैले, पैर घायल। कभी तो वे भी रंगरेलियाँ मनाते थे। पर अब उनके हृदय अन्धकार-पूर्ण थे। युवतियों के गालों पर गुलाब के फूल मुरझा गये थे। उनके इरादों पर मृत्यु की छाया फैल रही थी।

जैसे पगडंडी ने अभी-अभी अंगड़ाई ली हो। ऊपर पहाड़ पर बल खाती पगडंडी की ओर खुभती हुई निगाह से देखते हुए भिक्षु सोचने लगा—न जाने यह पगडंडी कहाँ खत्म होगी, न जाने यह कभी खत्म होगी भी या नहीं। जैसे यह पगडंडी एक बीमार गायिका हो और ऐसे में उसके ओठों पर कोई गान न थिरक सकता हो।

पुराने पदचिह्न किसी पहले काफिले की गाथा सुना रहे थे। इन पर बच-बचकर पैर रखता हुआ वह चला जा रहा था। वह बुद्ध

का उदास भिक्षु था—काफ़िले के साथ, पर काफ़िले से अलग

: ३ :

बुद्ध गया का गगनचुम्बी मन्दिर मानो पुकार-पुकार कर दूर-दूर के लोगों से यह कहता मालूम होता था—आओ संसार के प्राणियों, यदि तुम संसार के संकटों और कष्टों से बच कर आश्रय पाना चाहते हो तो यहां आओ। यदि तुम अपना पथ भूल गये हो तो यहाँ आओ। यदि तुम निर्वाण चाहते हो तो यह वही स्थान है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को आना होगा। यहाँ प्रत्येक प्राणी को आश्रय मिलेगा, ज्ञान और निर्वाण मिलेगा........और कदाचित् मन्दिर के शिखर की इसी पुकार को सुनकर हज़ारों लोग चले आ रहे थे। घोड़ों पर, बैलगाड़ियों में, पैदल—अनगिनत यात्री मन्दिर की ओर चले आ रहे थे। एक नवविवाहित दम्पति ने मन्दिर के सामने खड़े हो कर नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे देखते हुए मानो आँखों ही आँखों में कहा—इस मन्दिर के सम्मुख हम ऐसे ही हैं जैसे एक विशालकाय मनुष्य के सामने दो चींटियाँ। दुल्हन शरमा गई, पर दूल्हा मुस्कराया और उसकी मुस्कान अर्थपूर्ण क़हक़हे में फूट पड़ी। जैसे वह कह रहा हो—कोई कुछ भी कहे, यह मन्दिर मानव से महान् नहीं जिसके सुदृढ़ हाथों ने इसे बनाया था।

दुल्हन और भी शर्माती चली गई। जैसे वह कहना चाहती हो कि तुम अवश्य मेरे सम्मुख महान् हो। वह परे हट जाना चाहती थी, पर वहीं खड़ी रही। एक उचटती-सी निगाह उसने ऊपर सीढ़ियों पर डाली और पैर से निचली सीढ़ी को टहोका देती रही। उसके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ उभरीं। वह चाहती थी कि सबसे पहले ऊपर मन्दिर में पहुँचकर भगवान् के दर्शन किये जायँ और उनके आशीर्वाद से एक दिन वह बेटे की माँ बने। पर

अब वह दूल्हा को कैसे समझाती कि मन्दिर के चौखूंटे शिखर और सुनहरी कलश की ओर एक मूर्ख की तरह टकटकी बांध कर देखते रहने से क्या मिल सकता है।

शिखर और कलश से हटकर नवयुवक की निगाहें दुल्हन के चेहरे पर जम गईं। वह फिर मुस्कराया। जैसे कह रहा हो— मैं जानता हूँ कि तुम भगवान् से कुछ माँगना चाहती हो। पर मैं पूछता हूँ कि भगवान् के लिए तुम क्या लाई हो।

दुल्हन ने नजरें चुराकर एक झुकी हुई कमर वाले यात्री की ओर देखा जो धीरे-धीरे चलता हुआ समीप ही सीढ़ी पर बैठ गया था। एक क्षण के लिए उसे इस व्यक्ति के पीले वस्त्रों की ओर देखकर ध्यान आया कि उसी से आशीर्वाद मांग कर घर चली जाय। यदि वह कहेगा कि आशीर्वाद तो मांगती हो, मुझे क्या दोगी तो मैं झट कह दूँगी—श्रद्धा। हाँ साधु, मुझे फल चाहिये। पर इससे पहले कि वह उसकी ओर कदम उठाती, दूल्हा ने उसका बाजू खींचा और वे दोनों भीड़ में आगे बढ़ते हुए न जाने कहाँ गुम हो गये।

सीढ़ी पर बैठे-बैठे यात्री ने अनुभव किया कि वह इस वातावरण में अपरिचित है। सहमी सहमी नजरें उसने दायें-बायें घुमाईं। पर उसे कोई भी परिचित व्यक्ति दिखाई न दिया। उसने अपना चीवर हटाया जिसके नीचे बेंत का बक्स था। उसने अपनी पीठ की रस्सियां खोलीं और बड़े सम्मान से बक्स को अपने पास रख लिया। बहुत देर तक वह शिखर की ओर एक-टक देखता रहा।

लोगों की एक भीड़ भजन गाती हुई पास से गुजर गई। भिक्षु ने सोचा कि ये लोग कितने प्रसन्न हैं। पर इस भीड़ के सम्मुख उसे अपना एकाकीपन बुरी तरह खल रहा था।

"यात्री !" किसी ने बड़े सहानुभूतिपूर्ण स्वर में उसे अपनी

ओर आकर्षित करते हुए कहा, और भिक्षु ने आंखें उठाकर बुलाने वाले की ओर देखा।

"मैं इस मन्दिर का पुजारी हूँ, यात्री! शायद तुम बहुत दूर से आये हो।"

"हाँ बहुत दूर से, दूर वरमा से।"

"वरमा से?"

उसने सीढ़ी से उठने का यत्न किया। पर पुजारी बोला—"तुम बहुत थक गये हो, यात्री! अभी ठहरो। हम आराम से भगवान् के दर्शन करेंगे।"

पुजारी की आँखें भिक्षु के वक्स पर थीं। भिक्षु ने अर्थपूर्ण मुस्कान ओठों के कोनों पर लाते हुए कहा—"मैं भगवान् के लिए भेंट लाया हूँ।"

"भगवान् के लिए भेंट?" पुजारी का चेहरा खिल उठा, "चलो चल कर भगवान् के दर्शन करें।"

भिक्षु ने कहा—"पर पहले मुझे बोधि वृक्ष के नीचे ले चलो जहाँ भगवान् को ज्ञान प्राप्त हुआ था।"

"बोधि वृक्ष? वह वृक्ष अब कहाँ है, यात्री?"

"वह वृक्ष नहीं रहा?"

"उस वृक्ष का बीज हमारे हृदय में पड़ा है। और अब तो हम भी मानो बोधि वृक्ष हैं। लोग हम से ज्ञान लेने आते हैं।"

"बोधि वृक्ष कैसे मिट सकता है? जब तक भगवान् का नाम जीवित है, बोधि वृक्ष भी जीवित रहेगा।"

"हाँ-हाँ, बोधि वृक्ष जीवित रहेगा, जब तक भगवान् का नाम जीवित है। उस वृक्ष की सन्तान उसी स्थान पर मौजूद है। चलो मैं तुम्हें दिखलाता हूँ, यात्री!"

भिक्षु ने वक्स कंधे पर उठा लिया। बोधि वृक्ष के नीचे पहुँच कर पुजारी ने कहा—"ठीक इसी स्थान पर था मूल बोधि वृक्ष।"

भिक्षु ने आँखें बन्द कर लीं और बक्स नीचे रखकर बक्स के सामने झुक गया। सहसा वह कह उठा—"नहीं यह नहीं—वह सामने।" और बक्स उठाकर बड़ी तेज़ी से परे को सरक गया। छाया की तरह पुजारी भी पीछे-पीछे रहा।

बक्स रख कर भिक्षु बैठ गया और बोला—"यही है वह स्थान।" एक बार फिर उसने समाधि में आँखें बन्द कर लीं। जैसे वह साक्षात् भगवान् को पद्मासन में बैठे देख रहा हो जब उन्हें इसी स्थान पर ज्ञान प्राप्त हुआ था। पुजारी की निगाहें बराबर भिक्षु के बक्स पर जमी हुई थीं। वह सोच रहा था कि अवश्य इस बक्स में कोई बहुमूल्य वस्तु बन्द है, और बरमा में तो हीरे भी होते हैं। शायद इस यात्री को भी कहीं से दो-चार हीरे मिल गये हों। पहले तो बड़े-बड़े राजे-महाराजे ही हीरों की भेंट लाया करते थे। उसने दूर से मन्दिर के त्योहार की शोभा बढ़ाने वाले यात्रियों की ओर देखा। बहुत से लोग मन्दिर की परिक्रमा कर रहे थे। समाधिस्थ भिक्षु की ओर देखकर पुजारी ने सोचा—ऐसे यात्री तो रोज़ नहीं आते। उनकी सौ भेंटें और इसकी एक भेंट।

ज्यों ही भिक्षु ने आँखें खोलीं, पुजारी बोला—"चलो अब मन्दिर चलें, यात्री!"

दोनों मन्दिर की ओर चल दिये। भीड़ का शोर जैसे किसी गीत का सरगम तैयार कर रहा था। पहली सीढ़ी पर क़दम रखते ही भिक्षु रुक गया। भीड़ की ओर देखते हुए वह कह उठा—"भगवान्, इतना अन्तर! वह भी मन्दिर था, यह भी मन्दिर है। वह भी भीड़ थी; यह भी भीड़ है। वे तेरी शरण में आये थे, उन्हें शरण न मिल सकी। ये ज्ञान प्राप्त करने आये हैं, क्या इन्हें ज्ञान प्राप्त हो रहा है?"

पुजारी ने आश्चर्य से पूछा—"क्या कहा, यात्री?"

पर भिक्षु पुजारी की ओर देखे बिना ही कहता चला गया—"वहाँ के इन्सान अलग थे या यहाँ के भगवान् अलग हैं? उन्होंने केवल तुम पर भरोसा किया, भगवान्! वे केवल तुम्हारी शरण में आये और बच न सके। तो क्या इसका यह अर्थ है कि अहिंसा भी वही कर सकता है जो अपनी रक्षा करने के लिए हिंसा करने का बल रखता हो। तेरे भक्त कहलाने वालों ने तेरे भक्तों पर बम बरसाये। तेरे मन्दिर और पगोडे पर विनाश की आग बरसाई। और वहीं से मैं तुम्हारे लिए तुम्हारी भेंट लाया हूँ, भगवान्!"

पुजारी बोला—"तो चलो, यात्री, देर काहे की? भगवान् हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

भिक्षु के मुख पर एक नई आभा झलक उठी थी। जैसे उसे इस सीढ़ी पर ज्ञान प्राप्त हो गया हो। उसकी सब थकान दूर हो चुकी थी। पुजारी की ओर देखते हुए उसने मेघ-गम्भीर स्वर में कहा—"चलो चलें।"

वे सीढ़ियों पर चढ़ने लगे पर भिक्षु के लिए ये सीढ़ियाँ न थीं, निर्वाण की मंज़िलें थीं जिन्हें वह तय कर रहा था।

मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर भिक्षु ठिठका। उसने देखा कि वही दुल्हन, जिसका बाज़ू थामकर उसका पति भीड़ में खो गया था, भगवान् के सामने हाथ जोड़कर कह रही है—"अपने जैसा एक पुत्र मुझे भी दे दो, भगवान्!" और पास खड़ा हुआ पति भी एक क्षण के लिए झुक गया था। जैसे कह रहा हो—कृपा करो, भगवान्!

पति-पत्नी बाहर निकले तो पुजारी को देखकर ठिठक गये। पुजारी बोला—"जाओ बेटा, अगले त्योहार पर दो से तीन बन कर आना। मेरे आशीर्वाद से बेटा ही होगा। पर मेरे लिए भेंट लाना भूल न जाना।"

भिक्षु की आँखों के सामने बरमा के बौद्ध मन्दिर और पगोडे का वह दृश्य घूम गया, जब लहू में लथपथ एक बच्चे का सिर उसके चेहरे के साथ टकराया था। ओठों पर एक विचित्र मुस्कान के साथ उसने भगवान् की मूर्ति को नमस्कार किया। पद्मासन में भगवान् शान्ति के अवतार मालूम होते थे। जैसे उन्हें बरमा में अपने भक्तों पर बम बरसाये जाने का कोई समाचार न मिला हो। भिक्षु बक्स पर कांपता-लरजता झुका और फिर चकरा कर गिर पड़ा।

पुजारी ने लपक कर बक्स का ढकना उठाया और बुद्ध का कटा हुआ सिर देखकर नाक सिकोड़ता हुआ बाहर निकल गया।

अगला पड़ाव

खानाबदोश नर्तकी की पायल की झंकार उसकी रूह की गहराइयों में छनक रही थी। इक्के पर बैठे-बैठे उसने सड़क की ओर देखा, और फिर इस नर्तकी का विश्लेषण करने लगा। वह अभी अनजान है। न जाने किस साँचे में ढाली गई थी यह पुतली। उसका नाम अलका न होता तो शायद मुझे उसका नाच पसन्द न आता। मैं उसका साथी बन जाऊँ तो उसकी कला चमक उठे। उसने अपनी कला अपनी मां से दूध के साथ प्राप्त की होगी। उसका भाई तबला बजाता है और बुढ़िया मां, जो अपने ज़माने में एक अच्छी नर्तकी रही होगी, झाँझ बजाया करती है। और वह नन्दन महाराज—उसका हार्मोनियम मास्टर तो उसे सुलझे हुए मज़ाक की चीज़ें बताने में असमर्थ है। काश, वह नन्दन महाराज को छुट्टी दे देती और हमेशा मेरे ख्वाब पर नाचती!

एक पड़ाव, दूसरा पड़ाव। अब वह तो निराश हो चुका था और चाहता था कि एक ही छलांग में तीसरे पड़ाव पर जा पहुँचे। इक्के वाले ने उसे विश्वास दिला दिया था कि अब वे

हाँ जरूर मिल जायंगे।

वह इक्के वाले पर अपना रंग जमाने लगा—"छः राग हैं और छत्तीस रागिनियाँ ! फिर इन रागिनियों से निकली हुई और रागिनियाँ भी हैं। इन रागिनियों के कई-कई बेटे और कई-कई पोते हैं। रागों का खानदान बहुत पुराना है। समुद्र है समुद्र। कौन थाह पायगा भला ? हर राग की अपनी तस्वीर है, अपनी तासीर है ! अरे मियां, तुमने भैरव तो न सुना होगा। इसे सुनकर तो जंगल के हिरन भागे चले आते हैं। तानसेन ने दीपक गाया था। उसकी रूह सुलग उठी थी और तानी ने मेघ गाकर उसे फिर जीवन दान दिया था। अरे मियां, मेघ के असर से तो बादल घिर आते हैं, और मेह बरसने लगता है। दीपक गाकर तो दीये भी जलाये जा सकते हैं। आजकल तो ऐसे रागी नजर नहीं आते। लेकिन मियां जी, तलाश करो तो मिल भी सकते हैं।"

संगीत के अलावा वह नृत्य के सम्बन्ध में भी कुछ बताना चाहता था। पर झट अलका की नाचती थिरकती तसवीर सामने आ गई। बातों का सिलसिला वहीं टूट गया। उसे यों महसूस हुआ जैसे अलका पूछना चाहती हो कि तुम्हें पीलू में बहार के सुर अच्छे लगते हैं या नहीं। अरी भोली, वे किसको अच्छे नहीं लगते ? यह तो ऐसे ही है जैसे दो इत्र एक ही शीशी में भर दिये जांय। मन ही मन में उसने अलका को बताया कि वह कई बार सात रंग के शर्बत पी जाता है और उसके सीने में इन्द्रधनुष-सा उभरता है। उसी तरह जैसे वह अपने नाच में सातों रंग भरती चली जाती है। वह उसे यह भी समझा चुका था कि गीत का सम्बन्ध कानों ही से नहीं होता, इसे हम छू भी सकते हैं, चख भी सकते हैं और चाहें तो सूंघ भी सकते हैं। और जैसे इन सब बातों के जवाब में वह कह उठी—मास्टरजी, नन्दन

महाराज ने तो कभी कोई ऐसी बात नहीं बताई थी।

इक्के वाले ने उसके रबाब की ओर घूरते हुए कहा—"आप भी कोई बैजू बावरा होंगे।"

राधेश्याम ने जैसे सपने से चौंककर इक्के वाले की ओर देखा। उसे खुशी हुई कि यह मामूली देहाती भी बैजू बावरे की कहानी जानता है। वह उसे बताना चाहता था कि बैजू बावरा आज भी जीवित है। विद्या का बीज-नाश तो नहीं होता। हाँ भाई, आज भी बैजू बावरे और तानसेन में मुकाबला हो सकता है और आज भी तानसेन ही को मुँह की खानी पड़ेगी।

इक्के वाला फिर बोला—"क्यों जी, जब वह छोकरी नाचती होगी तो उसके बालों की लटें उड़कर गालों को छूने लगती होंगी।"

राधेश्याम ने न जाने क्या सोचकर कह दिया—"कल रात तुम भी अलका का नाच देखते तो इक्का चलाना छोड़ कर उमर भर उसी के पीछे घूमते रहते।"

इक्के वाले ने ललचाई हुई आवाज में कहा—"आजकल खूब ब्याह होते हैं और इन नाचने-गाने वाले लोगों की तो चाँदी है।"

राधेश्याम चाहता था कि इक्के वाले को डांटकर कहे—बस, बस मियां, तुम क्या जानो कि अलका कैसे-कैसे नाच नाचती है। पर उसने कुछ रुककर जवाब दिया—"हाँ-हाँ मियांजी, तुम सब ठीक कहते हो।"

बातों का सिलसिला फिर टूट गया। राधेश्याम सोचने लगा कि उसके काले-कलूटे रंग से हर किसी को नफरत है और उसके चेहरे की भद्दी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ उसकी असफलता में बहुत बड़ी बाधा बनी रही हैं। उस समय उसे अपनी मैना याद आने लगी। वह स्कूल से लौटता तो मैना चहक उठती। जैसे कह

रही हो—भले आये, मास्टरजी। सवेरे से रबाब सुनने को जी चाह रहा है। ज़रा दो तार छेड़ दो। फिर उसे अपनी पालतू बिल्ली की याद आई जो उसके पैरों से लिपट लिपट जाती थी। मैना क्या सोचती होगी? बिल्ली उदास स्वरों में म्याऊं-म्याऊं करती फिरती होगी। अब मैं कभी नहीं लौटूंगा। लड़के तो खुश होंगे कि एक ज़ालिम के पंजे से छुटकारा मिला। पर मैना जानती है कि मैं सचमुच उन्हें क्यों पीटता था। फिर जैसे चौंककर उसने इक्के वाले की ओर देखा, जो घोड़ी को दौड़ाये चला जा रहा था। वह उसे बता देना चाहता था कि जब अलका नाचती है तो उसका अंग-अंग झनझना उठता है।

आजकल खूब ब्याह होते हैं, उसने दिल ही दिल में कहा, पर मुझे कौन अपनी लड़की देगा? मेरी उमर के लोग तो पाँच-पाँच बच्चों के बाप हैं। मेरे भिक्षा-पात्र में किसी भले आदमी ने अपनी लड़की की चुटकी डालना पसन्द नहीं किया। अब मेरा रंग काला-कलूटा है तो मेरा क्या दोष? मैं रंग-रूप से हब्शी मालूम होता हूँ तो मेरा क्या क़सूर? मैना जानती है कि मुझे अनेक असफलताएँ हुई हैं और इसी असफलता की धारा में बहता हुआ मैं लड़कों को पीटता हूँ। मैना से बातें करते हुए मैं पत्नी की कमी को पूरा कर लेता हूँ। जब कभी मैना किसी तीखे स्वर में चहक उठती है तो यों मालूम होता है जैसे कह रही हो—मास्टरजी, मैं जानती हूँ कि तुम्हारे सपने बीच ही से टूट चुके हैं और तुम रबाब बजाकर अपने मन को यह विश्वास दिलाना चाहते हो कि गीत के संसार में किसी चीज़ की कमी नहीं है......."हो-हो-हो!" उसने एक पागल की तरह हँसते हुए इक्के वाले का बाज़ू खींचकर कहा, "यह तुम्हारा ख्याल सोलह आने ठीक है, मियां इक्के वाले, आजकल वाक़ई खूब ब्याह होते हैं।"

उसके मन में पिछली रात के नाच-गान की महफिल की एक एक रेखा उभरने लगी। गैस की रोशनी में अलका के चेहरे पर मासूम सी शोख़ी बरस रही थी। उसका थिरकता हुआ अंग-अंग उसके मन में विचित्र उतार-चढ़ाव पैदा कर रहा था। जब वह सुनहरी अँगिया और इन्द्रधनुष के रंगों वाला लहंगा पहने नैनून के दोपट्टे से घूंघट काढ़े दुलहनिया का नाच नाचने लगी तो यों मालूम हुआ जैसे कोई अप्सरा धरती पर आकर रास्ता भूल गई हो। और जब अलका ने हारमोनियम की गत पर अपना दिलपसन्द गीत अलापना शुरू किया—

अब तो निभायां सरेगी
बाँह गहे की लाज!

तो उसे हारमोनियम में वह उड़ान नजर न आई जो नाच को चरम-सीमा पर ले जा सकती। न जाने किस भावना के प्रभाव से वह अपना रबाब उठा लाया था और नन्दन महाराज की बग़ल में आ बैठा था। पर हारमोनियम और रबाब एक-दूसरे का साथ न दे सके। नन्दन महाराज ने हारमोनियम बन्द कर दिया। अलका भी नाचते-नाचते रुक गई। मालूम होता था कि एक प्रकार की रिक्तता सामने आ गई है। पर अगले ही पल फिर पायल छनक उठी। अलका ने फिर उसी गीत से गाना शुरू किया—

अब तो निभायां सरेगी
बाँह गहे की लाज!

उस समय उसकी आंखें चमक उठीं। उसके सामने न मैना थी, न बिल्ली! वह केवल अलका को देख सकता था.......वह गाते-गाते नाच रही थी—झन झन—झना झन झन—झन झन-झन—और नाचते-नाचते गा रही थी—

ऊँचा-नीचा महल पिया का

म्हाँसों चढ़्यो न जाय !

और जैसे इस गीत के जादू से उसका चेहरा पिघल कर किसी नये सांचे में ढल गया हो और अब उस पर किसी को हब्शी का गुमान न हो सकता हो। जैसे बरफ़ और अंगारे का मेल हो जाय। जैसे बिलम्बित और द्रुत में समझौता हो जाय। उसके शरीर में झरझरी सी दौड़ती गई। वह चाहने लगा था कि उठकर अलका के साथ नाचने लगे। नाच हो रहा था। जैसे पूर्णिमा से पहले ही पूर्णिमा का चांद झुककर धरती का चुम्बन ले रहा हो—वह युग-युग से चला आ रहा चांद, जो जीवन और मृत्यु की आंख-मिचौली पर जी-जान से कुर्बान हो सकता था। न जाने अलका की क्या चीज़ गिर पड़ी थी, जिसे ढूंढने के लिए वह सौ-सौ चक्कर काट रही थी। हवा में नाच की ख़ुशबू बसी हुई थी। जैसे चम्पा और चमेली एक साथ खिल उठे हों।

उस समय रबाब बजाते बजाते उसने सोचा था—अलका के शरीर पर भले ही नन्दन महाराज का अधिकार हो चुका हो, पर आज उसकी आत्मा मुझे मिल गई। कहां हारमोनियम, कहां रबाब ! एक सुलझी हुई खानाबदोश नर्तकी टूटे हारमोनियम की गत पर नाचे, यह तो अपमान है। अब तक वह अवश्य एक घोर मानसिक उलझन में फंसी रही होगी। ले जाओ अपना हारमोनियम, नन्दन महाराज ! अब तुम्हारा हारमोनियम यहां नहीं चलेगा। अब यहां रबाब बजेगा। और रबाब के ताल पर अलका गा रही थी—

सूली ऊपर सेज हमारी
किस विध सोना होय ?
गगन-मंडल पर सेज पिया की
किस विध मिलना होय ?

हेरी मैं तो प्रेम-दीवानी
मेरो दर्द न जानै कोय।

उसे यों लगा था जैसे उसके रबाब के सोये हुए गीत जाग उठे हैं। वह चाहता था कि उठकर अलका से कहे—बिना सोचे समझे अपनी भावनाएं मुझे सौंप दे, अलका! मेरी कला का सहयोग पाकर तेरी आत्मा बलवान् हो जायगी, तेरी कला और भी चमकेगी। हाँ, फिर गगन-मंडल पर हमारी सेज होगी। अलका—अलका रानी, तुमने अपने आपको कभी नहीं देखा। तुम तो यों कंघी-चोटी करती हो, जैसे ये बाल तुम्हारे नहीं हैं। तुम्हें किसी ने यह बताया ही नहीं कि नाच के साथ बालों का उतार-चढ़ाव भी जरूरी है। जैसे नाचते हुए पैर थिरकते हैं, ऐसे ही कंघी घूमती चली जाय ताकि बालों का व्यक्तित्व उजागर हो सके। बहुत-सी लटें तो तुम्हारे सिर पर सोई-सी रहती हैं। कहो—कहो तो मैं इन सोई नागिनों को जगा दूं।

इक्के वाला घोड़ी को गाली पर गाली दिये जा रहा था। राधेश्याम ने हड़बड़ाकर इधर-उधर देखा। पिछली रात की नाच-गान की महफिल की याद में वह ऐसा खो गया था कि उसे पता ही न चला कितना रास्ता कट गया और कितना बाक़ी है। इक्के वाले ने यह समझ कर कि मुसाफिर को झपकी आ रही है, उसका रबाब उठा कर अपने पास रख लिया था।

"बन्नो—मेरी बांकी बन्नो!" इक्के वाला अपनी घोड़ी को पुचकार रहा था।

राधेश्याम ने सोचा कि इक्के वाला कुछ ही क्षण पहले घोड़ी को गालियाँ दे रहा था, अब पुचकार रहा है। जीवन में पग-पग पर कुछ इतनी विषमता मिलती है कि इसे ठीक-ठीक समझाया नहीं जा सकता।

बिजली के कौंदे के समान पिछली रात की कहानी फिर

उसकी आँखों में घूम गई। अलका ने मुस्कराते हुए कहा था—मास्टरजी, हारमोनियम भी साज़ है। पर रबाब का मुकाबला नहीं। उस समय उसके बोल में न कोई दिखावा था और न शिष्टाचार। फिर उसने लचक कर कहा था—अगर मुझे पहले ख़बर होती तो मैं कब की हारमोनियम पर नाचना बन्द कर चुकी होती। उसका ख़याल था कि वे लोग एकाध रोज़ और ठहरेंगे। पर शायद नन्दन महाराज को यह स्वीकार न था। सवेरे पता चला कि वे रात ही को वहां से चल दिये थे।

उसका तन-बदन सुलगने लगा। जैसे उसने अचेतन मन के वश में आ कर दीपक गा दिया हो और अब मेघ के स्वरों के लिए उसकी आत्मा बुरी तरह तड़प रही हो। सूरज तो धरती पर आग बरसा रहा था। ऐसे में भला कहां से मेघ उमड़ आते?

इक्के के हचकोलों से उसकी आँखों पर कुछ-कुछ निद्रा छाने लगी। पसीने की कसैली बू पर वह बुरी तरह झुंझला उठा। वह तो किसी महकते हुए गीत के लिए तड़प रहा था।

उसने इक्के वाले का बाज़ू खींच कर कहा—"क्यों मियां, भला बताओ तो सही कि कोल्हू के बैल की तरह एक ही चक्कर में घूमते रहना अच्छा है या आदमी आगे को क़दम उठाये, चाहे उसकी रफ़्तार सुस्त ही क्यों न हो?"

पर इक्के वाले की समझ में यह बात बिलकुल न आई। उसने बिना कोई जवाब दिये घोड़ी को पुचकारना शुरू कर दिया—"मेरी बन्नो, बस यही चाल चलती चल!"

राधेश्याम ने फिर कहा—"संगीत और नृत्य से तो बड़ी-बड़ी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। मियां इक्के वाले, आज महफ़िल जमेगी। तुम भी वहीं ठहर जाना।"

इक्के वाले ने एक अजीब अन्दाज़ से मुस्कराते हुए कहा—"यह भी भला कुछ कहने की बात है ?"

राधेश्याम सोचने लगा कि वह अलका से कहेगा—अलका। तुम तो वागीश्वरी हो। शायद वह खिलखिला कर हंस पड़ेगी और कहेगी—वाह मास्टरजी, मैं तो अभी वागीश्वरी गा भी नहीं सकती। और इसके जवाब में झट यह कहा जा सकता है—अलका, अगर तुम वागीश्वरी नहीं तो उसकी बहन राजेश्वरी ज़रूर हो।

अगर इक्के वाला गवैया होता तो वह समय काटने और राधेश्याम पर अपना रोब जमाने के लिए उस से बहस छेड़ देता कि बड़े मियां, बताओ तो भला महाराष्ट्र के गवैये हिंडोल को सवेरे के समय क्यों गाते हैं जबकि हम इसे रात को गाते हैं। हर राग का समय निश्चित है न। और यह हिंडोल.......और इसके आगे वह कुछ न सोच सका। ऐसे ही उसे अनुभव होने लगा, जैसे दूर अलका हिंडोले पर झूलती हुई हिंडोल गा रही हो। फिर एक धचके ने उसे कल्पना के संसार से वास्तविक संसार में ला फेंका। इक्के की रफ्तार बहुत तेज़ हो गई थी और उसने देखा कि घोड़ी पसीना-पसीना हो रही है।

इक्के वाले की निगाह सामने सड़क पर थी—कभी न खतम होने वाली सड़क पर। वह घोड़ी को गालियां देते और पुचकारते तंग आ चुका था और उसने अब इसकी बागें ढीली छोड़ दी थीं।

राधेश्याम सोचने लगा—क्या दो गवैये एक ही समय एक राग नहीं अलाप सकते? और क्या दो आदमी एक ही समय एक स्त्री से प्रेम नहीं कर सकते? पर वह नन्दन कहाँ का गवैया है? वह तो राग का 'क ख ग' भी नहीं जानता। निरा मूर्ख ही तो है।

इक्केवाला बोला—"मेरा छोटा भाई पहाड़ी खूब गाता है।"

राधेश्याम ने अपनी सारी मुस्कराहट आँखों के एक कोने में जमा करते हुए कहा—"उसके फेफड़े मज़बूत होंगे। पहाड़ी हर किसी के वश का रोग नहीं, मियां जी ! इसमें गहरा सांस लेना पड़ता है। पहाड़ी राग भी है और रंग भी।"

फिर राधेश्याम सोचने लगा—मेरी अलका गाती है तो ऐसे मालूम होता है जैसे वह जीवन को इन्द्रधनुषी वस्त्र पहना रही हो। अपने नाच में वह हमेशा सौन्दर्य का निर्माण करती है—सौन्दर्य, जिसमें पुरानी मुस्कराहटें नई मुस्कराहटों में लीन हो जाती हैं। उसकी घनी पलकें गुलाली की तरह कांपने लगती हैं। अलका ! अलका !—वह ख़ामोशी से दुहराने लगा;—तेरी आवाज़ तो भीने-भीने ख़याल पूरिया धनाश्री की तरह उड़ती है और तेरी मुस्कान अल्हड़ कुँवारी खम्भावती की तरह नशीली मालूम होती है।

उसके मन में उस समय मैना चहक उठी—मास्टरजी !

और जैसे बिल्ली चिल्लाई—मास्टरजी !

पर उसे उस दीपक गाने वाले गवैये का ध्यान आया अपने राग में कुछ इतना खोया हुआ था कि गाते गाते आग की भेंट हो गया था।

फिर जैसे अलका उसे पुकारने लगी—मास्टर जी, मास्टर जी !...........और वह मानो जल्दी जल्दी अपना रबाब बजाता चला गया। जैसे रबाब का गीत मौत से टकरा सकता हो। उधर। अलका चिल्लाये जा रही है—मास्टर जी ! आग की लपटें ! दौड़ो ! भागो ! पर वह तो अपने रबाब में मस्त है। अलका की पुकार अत्यन्त तीव्र है। पर वह तो यह समझ रहा है जैसे वह मेघ गा रहा हो। गीत तो कैसे मरेगा ? मैं तो क्या जलूँगा ? मेरे मेघ के आगे दीपक की लगाई हुई

आग भला कैसे ठहर सकेगी? अलका, तुम तो नादान हो, भोली, एकदम नासमझ......

इक्केवाले ने राधेश्याम का बाजू झंझोड़ कर कहा—"देखो जी, घोड़ी क्या चाल चल रही है!"

राधेश्याम ने उसकी आँखों में आँखें डालते हुए कहा—"मियाँ, क्या तुम भी कभी किसी के पीछे भटकते फिरे हो? यकीनन नहीं। बुड्ढे, तुम जवान हो सकते हो।"

इक्के वाला खोखली-सी हँसी हँसकर बोला—"जी, अब तो क़ब्र में पहुँचकर ही जवान हूँगा।"

राधेश्याम को यों अनुभव होने लगा, जैसे वह एक वीर सैनिक के समान किसी क़िले पर विजय पाने जा रहा हो........ फिर अचानक उसे नाच-गान की महफ़िल के ख़याल ने चारों तरफ़ से घेर लिया। वह रबाब बजा रहा है। अलका उसके रबाब पर थिरक रही है। उसके ओठों से एक संगीत-मदिरा रिसती हुई उसकी आत्मा में घुली जा रही है। फिर जैसे इस गान की भीनी-भीनी ख़ुशबू वातावरण में बिखर गई। इसका कोमल रंग इन्द्रधनुप की तरह छागया। इसका रसीला स्वाद उस पर जादू सा करने लगा। और वह अलका को अपनी बाहों में थामे नाचता हुआ, गाता हुआ ऊपर ही ऊपर उड़ता चला जा रहा है—दूर शिखरों पर—एक जानी-पहचानी मंज़िल की ओर जो अनेक वर्षों से उसे पुकार रही थी.......

अब सराय नज़र आने लगी थी। घोड़ी ज़ोर से हिनहिनायी और इक्के वाला ख़ुशी से बोला—"बस दो क़दम और, मेरी बन्नो!—दो क़दम और।"

जैसे ही इक्का रुका, राधेश्याम रबाब उठाये लपक कर नीचे उतरा और सराय में घुस गया। उस समय उसका सिर ऊँचा हो गया था। उसके पैर बड़ी तेज़ी दिखा रहे थे।

पर जब दूसरे ही क्षण वह सराय से बाहर निकला तो उसका सिर झुका हुआ था, पैर लड़खड़ा रहे थे। वह इक्के पर आकर गुम-सुम बैठ गया। अचानक उसे ख़याल आया कि वह अलका का नहीं, ज़िन्दगी का पीछा कर रहा है—ज़िन्दगी, जो एक नर्तकी की तरह मुस्कराहटें बिखेरती है और एक जादूगरनी की तरह नयन मटका कर नज़रों से ओझल हो जाती है।

उसने इक्के वाले को हाथ से इशारा किया और धीरे से कहा—"अगले पड़ाव की ओर।"

अर्चना के पापा जी

"रूपम्, तुम्हारी क्या बात है," मैंने कहा। और इसके उत्तर में जैसे एक ग्रामोफोन रिकार्ड शुरू हो गया हो। पहले रूपम् ने कालिदास के अनेक श्लोक सुना डाले, फिर भवभूति की ओर भी उसका ध्यान गया। पर जब वह स्वयं अपनी कविता पर पहुँचा तो जैसे ग्रामोफोन की सूई एक ही स्थान पर रुक कर उकता देने वाले स्वर उत्पन्न करने लगी।

"जिस कोठी में मुझे ठहरने के लिए स्थान मिला है, वहाँ मौलसिरी के अनेक पेड़ हैं," उसने बड़े गर्व से कहा, 'आप अपनी आँखों से देख लेंगे कि ये वृक्ष कितने सुन्दर हैं।"

मैंने कहा—"ये वृक्ष अवश्य सुन्दर होंगे। हाँ, तो जरा यह तो सोचिए कि यदि ये वृक्ष कालिदास ने देखे होते तो उनकी लेखनी से कितनी सुन्दर कविता का जन्म हुआ होता।"

रूपम् ने इसे कालिदास की कोई कविता सुनाने का निमन्त्रण नहीं समझा। बल्कि वह तो अपने कष्टों का बखान करने लगा।

उसने बहुत अनुरोध किया कि मैं उसके साथ उस कोठी

पर अवश्य चलूँ। और मुझे उसकी बात रखनी पड़ी। मैं पैदल ही उसके साथ चल पड़ा और जाकर अपनी आँखों से देखा कि जहाँ उसे सुन्दर वृक्षों से प्रेरणा मिल सकती है, वहाँ उसकी समस्या कुछ कम कठिन नहीं।

मैंने बहुत कोशिश की कि रूपम् इधर-उधर की बातों में उलझ जाय। पर उसका मन उस समय कुछ इतना खिन्न हो उठा था कि न मैं उसे राजधानी की सड़कों के विचित्र नाम सुना कर उलझा सका, और न राजधानी के बदलते हुए इतिहास के प्रमुख पृष्ठ दिखा कर ही मैं उसे अपनी ओर आकर्षित कर सका। हाँ, जब मैंने उसे अपने एक मित्र की बातें सुनानी शुरू कीं तो वह उछल कर कह उठा—"मुझे भी मिलाइये उन से।"

"ज़रूर ज़रूर," मैंने शह दी, "आप से मिल कर मेरा वह मित्र सचमुच बहुत खुश होगा। उसके लतीफ़े सुन कर आप अश अश कर उठेंगे। हाँ, वह अपने लतीफ़ों की कीमत भी वसूल कर लेता है। आप उसे अपनी कुछ कविताएँ सुना सकते हैं।"

"कविताएँ तो मैं बीस सुना दूँगा," उसने एक विजयी वीर के समान उछलकर कहा। "पर इधर मेरे मन पर वेदना की भारी चट्टान गिरती जा रही है। उसका क्या इलाज किया जाय ?"

बस उस दिन सचमुच वह एकदम उदास होता चला गया। मैं समझ गया कि जब तक उसे कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं मिलता उसकी समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

इस कोठी में उसके साढ़ू रहते थे। उसकी साली जीवित होती तो उसे इस कोठी में रहना ज़रा भी न खटकता। अब तो वह समझता था कि वह अपने साढ़ू के लिए गले पड़े ढोल के समान है। पर आखिर वह कहाँ जाकर रहता ? राजधानी में पहुँचने से पहले उसने बहुत सोचा था। उसका परिवार साथ न होता तब भी शायद उसे ज़रा हिचक न होती। परिवार साथ था। पत्नी, तीन

कन्याएं—सबसे बड़ी याचना, जो गाती थी, मंझली अर्चना जिसे नृत्य कला की शिक्षा दी गई थी, सबसे छोटी श्यामली जिसे सबसे अधिक सैर का शौक था, और तीनों बहनों से छोटा दलीप जिसका भविष्य माता-पिता और तीनों बहनों की दृष्टि में बहुत उज्ज्वल था। खैर, रूपम् इतने बड़े परिवार को अपने साहू की कोठी में ले तो आया था, पर प्रतिक्षण उसे इस कोठी में रहना खलता था। वह चाहता था उसे कोई किराये का स्थान मिल जाय।

रूपम् से मेरी भेंट की कहानी कुछ कम मनोरंजक नहीं। मैंने पहले उसका नाम तक नहीं सुना था। एक दिन ट्राम में मैंने उसे देखा। वह मेरे समीप ही खड़ा था। पास वाला व्यक्ति मुझे किनारे की ओर धकेलते हुए सुकड़ कर उसे थोड़ी जगह देना चाहता था। पर मैंने इसका विरोध किया और लाचार होकर उसे अपनी जगह पर खड़े रहना पड़ा। हम एक ही जगह ट्राम से उतरे। उसने न जाने क्या सोच कर मेरा नाम पूछ लिया। अपना नाम बताते सचमुच मुझे बहुत संकोच हुआ। पर मुझे अपना नाम बताना ही पड़ा। उसने आगे बढ़कर मेरा आलिंगन कर लिया। बोला—"मुझे रूपम् कहते हैं!" रूपम्—यह नाम मानो मेरी आत्मा में उतर गया। मौलसिरी के वृक्ष उस समय हमारे समीप होते तो वे भी झूम उठते। हो सकता है कि हम अपने-अपने रास्ते पर चल पड़ते और दूसरी या तीसरी बार मिलने का प्रश्न ही न उठता। पर रूपम् जाने क्यों मेरी तरफ कुछ अधिक ही खिंच गया। इसका कारण आज तक मेरी समझ में नहीं आया। उसने तुरन्त अपनी डायरी में मेरा पता लिख लिया और अगले ही दिन मेरे यहाँ चला आया। दूसरी भेंट में जब उसकी कवितायें सुनने को मिलीं तो पता चला कि वह पिछले पच्चीस वर्ष से कविता लिखता

आ रहा है।

यदि रूपम् चार-पाँच बार आग्रह न करता तो मुझे कालिदास रोड की वह कोठी देखने का सौभाग्य कैसे प्राप्त होता? मैं उसके साथ चल पड़ा। रास्ते भर मैंने अपनी कमज़ोरी को कोसना चाहा। यह तो बड़ी ज़बरदस्ती है। हाँ, बड़ी ज़बरदस्ती। यों हर किसी के साथ हो लेने से किसी पर भी रोब नहीं रहता। पर मैंने पलट कर अपने मन को समझा लिया। इसमें रोब क्यों नष्ट होने लगा? मिलने-जुलने के बिना भी क्या जीवन है? मिलने-जुलने से तो सौ-सौ गुत्थियां सुलझती चली जाती हैं। एक व्यक्ति की समस्या दूसरे व्यक्ति की समस्या से बहुत अलग तो नहीं है।

कोठी में पिछवाड़े का कमरा और बरांडा इन लोगों के पास था। वहां पहुँच कर रूपम् ने सबसे पहले मेरा परिचय अर्चना से कराया और उससे कहा कि वह मेरे लिए पीने का शीतल जल लेती आये। पता चला कि याचना और श्यामली बागीचे में बैठी कुछ पढ़ रही हैं। दलीप और उसकी माता सो रहे थे। वर्षा ऋतु का आरम्भ हो चुका था। अतः मेरे मुख से ये शब्द न निकले कि यह कौन सा सोने का समय है।

अर्चना ने नीबू और चीनी को जल में मिलाते समय सुन्दर अनुभव का परिचय दिया। पहला गिलास उसने मेरे हाथ में थमाया, दूसरा रूपम् के हाथ में। उस समय वह तनिक भी न शरमाई, न उसके हाथ तनिक भी कांपे। पतली गुँथी हुई वेणियाँ दोनों ओर गले में लटकती हुई, कानों के ऊपर से दो गुँथी हुई मेंढियां सिर के ऊपर ले जाकर बड़े कलापूर्ण ढंग से आपस में गुथी हुईं, कानों में सोने की बड़ी-बड़ी बालियां और माथे पर गोल टिकली जिसका नन्हा दर्पण दूर से चमक रहा था। जहरमोहरे रंग का गरारा, बादामी रंग की कमीज़ और कन्धों

पर लहराता दूधिया दोपट्टा—यह उसकी वेश-भूषा थी। यह कैसी वेशभूषा है? मैंने अपने मन से पूछने का यत्न किया। नीबू और चीनी मिले जल के घूँट भरते हुए मैं सोच रहा था कि नीबू भी पहले से सस्ते हो गये हैं और चीनी पर भी कंट्रोल नहीं रहा। यह तो अच्छा है। प्रत्येक वस्तु ठीक दाम पर मिलनी चाहिए। कंट्रोल फिजूल है। युद्ध से पहले कहां ये सब कंट्रोल होते थे? और अब जब युद्ध कभी का खत्म हो गया, एक भी कंट्रोल की गुंजाइश नहीं रही।

रूपम् कह उठा—"अर्चना उदयशंकर की शिष्या है।"

मैंने कहा—"उदयशंकर ने संसार के अनेक रंगमंचों पर हमारी जन्मभूमि के अनेक नृत्य जीवित अवस्था में प्रदर्शित करने का श्रेय प्राप्त किया है, पर एक बात है...."

"कहिए," रूपम् ने शह दी।

"हाँ, तो मैं कहने जा रहा था कि युद्ध के दिनों में जबकि चीनी पर भी कंट्रोल लग गया, प्रत्येक वस्तु वार क्वालिटी हो कर रह गई। यहाँ तक कि कला भी, और मैं तो कहूँगा कि इसका कुप्रभाव नृत्य कला पर भी पड़ा है।"

अर्चना और भी परे को सरक गई। शायद वह उदयशंकर की कला की आलोचना में ऐसी कोई बात सुनने को तैयार न थी। मैंने सोचा कि काहे को व्यर्थ ही यह बात कह दी। इतने में रूपम् ने बीच-बचाव करते हुए कहा—"इधर आओ, अर्चना! बल्कि बाहर से याचना और श्यामली को भी बुला लाओ।"

अर्चना बाहर बग़ीचे की तरफ दौड़ गई। दौड़ने का उसका अपना अन्दाज़ था, जिस पर नृत्य कला की पुट चढ़ी हुई थी। वह झट याचना और श्यामली को अपने साथ लेती आई। याचना के मुख पर संयम और आत्म-सम्मान का भाव बहुत प्रबल दिखाई देता था। खादी की सफ़ेद धोती, खादी की

सिंदूरी अंगिया में लिपटा हुआ उसका शरीर मानो इस बात की घोषणा कर रहा था—अभी संघर्ष के दिन खत्म थोड़े ही हो गये! श्यामली ने सरदई सलवार, कमीज़ और इसी रंग का दोपट्टा पहन रखा था। तीनों वहनें एक दूसरी से कितनी अलग थीं। पिता का संकेत पाकर वे पास की कुरसियों पर बैठ गईं।

वरांडे में कुर्सी पर बैठे-बैठे याचना ने आवाज़ दी—"माँ!"

दूसरी आवाज़ के साथ इन कन्याओं की माँ भी उठ बैठी और बाहर वरांडे में चली आई। मेरे समीप आकर उसने दोनों हाथों से प्रणाम किया। उसने हरी किनारी वाली खादी की सफेद साड़ी पहन रखी थी। देखने में वह अधेड़ आयु से भी कम लगती थी। रूपम् ने उसका परिचय कराते हुए कहा—

"अर्चना की माँ सात वर्ष जेल में रह चुकी हैं!"

"राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों ने पुरुषों से कुछ कम काम तो नहीं किया," मैंने अपनी कुर्सी से उछल कर कहा।

"मैं तो कालिज में पढ़ाता रहा या कभी-कभी कविता लिखता रहा," रूपम् ने कुछ दवी-दवी सी आवाज़ में कहा, "मैंने राष्ट्र के लिए कुछ भी तो वीरता नहीं दिखाई।"

मैंने वात का रुख पलटते हुए कहा—"वीरता ही तो कसौटी नहीं है। सड़क पर खड़े हुए मौलसिरी के वृक्षों को ही लीजिए। इन्होंने कौन-सी वीरता दिखाई है? इनके पुष्प, इनकी छाया, इनकी सुन्दरता—यही इनकी विशेषता है।"

"अर्चना की माँ, अव कहो?" रूपम् कह उठा।

"ठीक ही तो कह रहे हैं," अर्चना की माँ के मुख पर मुस्कान के परदे में कई महत्त्वपूर्ण रेखाएँ खिंचती नज़र आइ, "पर कहो तो एक वात मैं अपनी ओर से जोड़ दूँ, मेंह हो, धूप हो, आँधी हो, मौलसिरी के पेड़ अपने स्थान पर डट कर खड़े रहते हैं, यही तो उनकी वीरता है।"

"अच्छा, अब यह वीरता की गाथा छोड़ो, अर्चना की माँ, इनके लिए कोई चीज बना लाओ," रूपम् ने हँस कर कहा।

"जो कहो बना लाऊँ ?"

"अच्छा, तो थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए," अर्चना की माँ बोली और वह वरांडे के बाएँ कोने की ओर घूम गई। तीनों कन्याएँ भी उठ कर माँ के पास चली गईं।

झट आग सुलगा ली गई। झट चूल्हे में आग की लपटें दिखाई दीं। झट कढ़ाई चढ़ा दी गई। अर्चना ने आटा और मीठा घोल लिया। झट मालपूओं की तैयारी शुरू हो गई।

कड़कते घी की सुगन्ध से इतना तो स्पष्ट था कि घी खरा और ताजा है। मैंने कहा—"मालपूए तलने की प्रथा बहुत पुरातन होगी।"

"जी हाँ," रूपम् कह उठा, "किसी प्रथा की सुन्दरता पहले इसी कसौटी पर परखी जानी चाहिए कि वह कितनी पुरातन है।"

मैंने हँस कर कहा—"सड़क पर मौलसिरी के वृक्ष खड़े हैं। ये स्वयं चाहे अधिक पुरातन न हों, पर इनसे इतना तो प्रत्यक्ष है न कि मौलसिरी इस देश की पुरातन वस्तु है। उतनी ही पुरातन जितनी कि यहां की संस्कृति है। मौलसिरी पर सदैव नूतन पुष्प खिलते हैं—नितान्त नूतन! और सच पूछो तो प्रत्येक नूतन पुष्प पुरातन प्रथा को एक पग आगे ले जाने में सहायक होता है।"

मौलसिरी के पेड़ तो बाहर सड़क पर खड़े थे। हम इस कोठी के पिछवाड़े वाले वरांडे में बैठे थे जहां से मौलसिरी का एक भी वृक्ष दिखाई नहीं दे रहा था। कोठी के भीतर तो दूसरे ही वृक्षों की गोलाकार पंक्ति हमारा ध्यान खींच रही थी। फिर भी मुझे अपनी कल्पना पर मौलसिरी का आधिपत्य अनुभव हो रहा था। मौलसिरी, तुझे शत्-शत् प्रणाम! मैं कहना चाहता था, तेरे पुष्प सदैव खिलते रहें। तेरी छाया और तेरी सुन्दरता का क्रम

चलता रहे—अटूट गति से !

रूपम् बोला—"अभी और कितनी देर है मालपूओं में, अर्चना की माँ ?"

"अब कुछ देर नहीं," अर्चना की माँ झट कह उठी।

"मालपूआ हमारी संस्कृति का प्रतीक है," रूपम् कह रहा था, "वर्षा ऋतु प्रति वर्ष एक बार अवश्य आती है और इन दिनों मालपूए कितने स्वादिष्ट लगते हैं। ऐसा क्यों है ? कभी सोचा आपने ?"

मैं रूपम् के इस प्रश्न के लिये तैयार न था। इसलिये मैंने इसका सीधा उत्तर देना ठीक न समझा। मैं सोच रहा था कि रूपम् क्या पढ़ाता होगा। उसे वर्षा ऋतु के आगे पीछे भी तो मालपूओं के स्वप्न आते होंगे।

मालूम होता था कि मालपूए आने में अभी देर है। जोर की हवा चलने लगी और बढ़ते-बढ़ते इसने आँधी का रूप धारण कर लिया। सामने के वृक्षों की गोलाकार पंक्ति जोर-जोर से झूमने लगी।

परे बरांडे के कोने में आग को सम्भालने की चिन्ता में अर्चना की माँ ने घी की कढ़ाई नीचे उतार दी और अर्चना ने पानी के छींटों से आग को शान्त कर दिया। जितने मालपूए तैयार किये जा चुके थे उन्हें याचना और श्यामली ने झट ढक कर रख दिया। आँधी घटने के स्थान पर और भी बढ़ती चली गई। वृक्षों की गोलाकार पंक्ति का सजीव चित्र उड़ती हुई मिट्टी ने ढाँप लिया था। जिसे कहते हैं हाथ को हाथ सुझाई न देना, बस समझ लीजिए कि कुछ ऐसी ही आँधी थी। न जाने इतनी मिट्टी कहाँ से आ गई थी ? जाने हवा की गति में इतना वेग कहाँ से आ गया था ? मैं अपनी जगह पर डट कर बैठा रहा। रूपम् उठ कर एक-दो बार अर्चना की माँ की तरफ़ गया। शायद वह

मैंने कहा—"ऐसी आँधी में तो प्रकृति का सिंहासन डोल उठता है।"

"शायद यह प्रकृति की परीक्षा है," रूपम् ने शह दी।

"वे आँधियां और होती हैं जो मानवता की परीक्षा लेती हैं!"

"जी हां!"

"मानवता को उन्मूलित करने वाली आँधी के अपराध कभी क्षमा नहीं किये जा सकते।"

"मैं आप से सहमत हूँ।"

यह अन्तिम बात रूपम् ने कुछ इन स्वरों में कही जैसे वह अपनी गिनती उन्मूलित व्यक्तियों में करने की कुछ भी आवश्यकता न समझता हो। कालिदास रोड की एक कोठी के पिछवाड़े वाला बड़ा कमरा और बरांडा उसके अधिकार में था ही, यद्यपि वह इससे कहीं अधिक स्वतन्त्र स्थान प्राप्त करना चाहता था। वह उन लाखों व्यक्तियों से कहीं अधिक सौभाग्यशाली था जिन्हें शरणार्थी कैम्पों में रहने पर बाध्य होना पड़ रहा था।

मैंने कहा—"आँधियां मानवता को उन्मूलित करने का निश्चय भले ही कर लें, पर आँधियां अपने कार्य में सफल नहीं हो सकतीं। मानवता बची रह जायगी। मानवता—जिसकी जड़ें धरती में कहीं गहरी चली गई हैं।"

"सच है," रूपम् ने यों ही स्वर में स्वर मिलाया।

मैंने फिर कहा—"घृणा, क्रोध, द्वन्द्व, हिंसा—ये सभी आँधियां ही तो हैं। जाने ये आँधियां क्यों चल पड़ती हैं? ये मानवता की शत्रु आँधियां।"

रूपम् बोला—"ऐसी ही एक आँधी आई जिसने मुझे अपनी जगह से इतनी दूर ला फेंका। आज हमारे रहने के लिये जगह नहीं। आज मुझे किराये पर भी जगह नहीं मिल रही है।"

रूपम् ने कहने को तो यह बात कह दी। पर उसकी आवाज़

में वह दर्द न था जो प्रायः शरणार्थीकैम्पों में रहनेवाले व्यक्तियों की गाथा सुनते समय मेरे हृदय को छू-छू जाता था।

आँधी बिलकुल थम गई थी। अर्चना ने पास आ कर सूचना दी—"पापा जी, मालपूए तैयार हैं।"

"तो ले आओ!" रूपम् कह उठा।

हमने उठ कर अपने वस्त्रों से मिट्टी झटक डाली और हाथ धो कर मालपूए खाने के लिए तैयार हो गये। यह देख कर हमारे हृदय नाच उठे कि याचना, अर्चना और श्यामली इस सहभोज में सम्मिलित होंगी। दलीप भी इधर ही चला आया। रूपम् कह उठा—"तो तुम ही पीछे क्यों रह जाओ, अर्चना की मां?"

चीनी की प्लेटों में मालपूए परोसे जा रहे थे। तीन बड़ी-बड़ी प्लेटों में आम सजा कर रख दिये गये। इधर हमने मालपूओं की तरफ हाथ बढ़ाया, उधर वर्षा होने लगी।

रूपम् झट कह उठा—"लो अब तो प्रकृति का राज्याभिषेक भी आरम्भ हो रहा है। यह दिन कितना शुभ है।"

मैं कहना चाहता था कि इतनी जल्द भयानक आँधी को भूल गये, यह तो बड़ी विचित्र बात है। पर मैंने यही उपयुक्त समझा कि बात को बढ़ावा देने की बजाय उदरपूर्ति की समस्या का हल किया जाय।

"एक कवि का प्रणाम लो, वर्षा ऋतु!" रूपम् कुछ-कुछ नतमस्तक हो कर कह उठा।

इस पर अर्चना खिलखिला कर हंस पड़ी। शायद वह कहना चाहती थी—वर्षा ऋतु को प्रणाम करते समय मालपूए पकानेवाले हाथों को प्रणाम करना क्यों भूल रहे हो पापा जी!

याचना कह उठी—"मालपूए कैसे बने हैं?"

पर रूपम् ने इस प्रश्न का उत्तर देने की बजाय कवि तरंग का परिचय देते हुए कहा—"प्रकृति अंगड़ाई ले रही है प्रत्येक वृक्ष

में, प्रत्येक शाखा में।"

अब के याचना खिलखिला कर हँस पड़ी। बोली—"हम कितने दिन से बाट जोह रहे थे। दो सप्ताह पिछड़ कर वर्षा ऋतु आई। चलो वह आ तो गई।"

मैं कहना चाहता था कि दो सप्ताह का विलम्ब कुछ कम तो नहीं होता। हम वर्षा ऋतु का यह अपराध क्षमा नहीं कर सकते। और आज की आँधी का अपराध भी तो हम वर्षा ऋतु के माथे पर ही मढ़ेंगे। मैं यह भी कहना चाहता था कि यह ऐसे ही है जैसे हम घृणा, क्रोध, द्वंद्व और हिंसा की आँधी को क्षमा नहीं कर सकते।

रूपम् बोला—"मेरे हृदय में आज एक नया गीत जाग उठा है।"

"उस गीत के बोल आपके ओठों पर कब आयँगे, पापा जी?" याचना ने पूछ लिया।

"और वह जो किसी ने कहा है—ओठों तक आये हुए शब्दों को पीछे मत धकेलो!" मैंने शह दी।

"हां, हां, ओठों तक आये हुए शब्दों को पीछे धकेलना अशुभ है, अमंगल है," रूपम् ने विश्वासपूर्ण शब्दों में घोषणा की।

मालपूए या आम खाने से कहीं अधिक रूपम् वार्त्तालाप में रस ले रहा था। बोला—"मैं अपना समस्त भावी जीवन कविता की सेवा में अर्पण कर देना चाहता हूँ। मेरी अनेक कविताएं अप्रकाशित पड़ी हैं और अनेक कविताएं मेरे हृदय में मचल रही हैं या मेरे सामने हवा में तैर रही हैं। बस उन्हें पकड़ कर शब्दों में बाँधने भर की देर है।"

कोई और समय होता तो मैं चुप रहता। उस समय मैंने तमतमा कर कहा—"मैं आप से सहमत नहीं हूँ। क्योंकि इस

निर्णय से आपको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ेगा। कविता का पारिश्रमिक इस देश ही में नहीं, बल्कि प्रत्येक देश में, सब से कम अर्थात् लेखों, कहानियों, एकांकियों इत्यादि से कहीं कम दिया जाता है। आप इसे अपनी आय का साधन बना कर भूल करेंगे। एक कविता ही क्यों, इस देश में तो लेख, कहानी और एकांकी लिख कर भी आप ढंग से निर्वाह नहीं कर सकेंगे। क्योंकि इतना तो सत्य है कि लेखक की आय का ठिकाना या भरोसा ही क्या ? लेखक से तो एक तांगेवाला ही मजे में कमाता-खाता है जो अपनी आय को हवाई आमदनी कह कर एक प्रकार की नम्रता का प्रमाण दिया करता है।"

तांगेवाले से लेखक का मुकाबला करने की बात सुन कर अर्चना खिलखिला कर हँस पड़ी। हंसी रोकना उसके लिये असम्भव था। वह दौड़ कर भीतर कमरे में चली गई। सच पूछो तो जाते-जाते वह किसी नृत्य-मुद्रा का प्रदर्शन करती गई। याचना और श्यामली भी हँस रही थीं। मां की गम्भीर मुद्रा इस दृश्य को दूसरी ही पुट दिये जा रही थी। उससे तो दलीप ही अच्छा रहा जो बहनों की देखादेखी अपनी मुस्कान द्वारा हंसी तक पहुँचने का यत्न कर रहा था। स्वयम् रूपम् अर्चना की मां की भांति गम्भीर दिखाई दे रहा था। उसने अपनी बात के समाधान में कहा—"जहाँ न पहुँचे रवि वहां पहुँचे कवि !"

याचना ने अर्चना को आवाज देते हुए कहा—"अरी अर्चना, यहां इतनी अच्छी-अच्छी बातें हो रही हैं और तुम हो कि उनसे वंचित रहना चाहती हो।"

याचना का संकेत समझ कर श्यामली उठ कर कमरे में गई और अर्चना की बाँह पकड़ कर ले तो आई। उस समय मानो उसके गले में दोनों वेणियाँ भी खिलखिला कर हँस रही थीं। याचना बोली—"पगली मत बनो, अर्चना ! अभी-अभी पापा

जी कह रहे थे कि—जहां न पहुँचे रवि वहां पहुँचे कवि ! ठीक है न ?"

अर्चना सचमुच पगली ही तो थी। न जाने वह क्यों हँस रही थी। मैंने बीच-बचाव करते हुए कहा—"मैं यह बात मान लेता हूँ कि कवि की कल्पना बहुत बलवती होती है।"

"अब आये आप ढंग पर," रूपम् खुश होकर बोला—"कवि की तो प्रत्येक युग में आवश्यकता रहेगी। कवि के बिना तो मैं समाज की कल्पना ही नहीं कर सकता।"

मैंने संभल कर कहा—"मैंने तो केवल इतना ही कहा था कि कविता को अपनी आय का साधन बनाने की भूल मत कीजिए।"

रूपम् के चेहरे पर उस समय अनेक रेखाएं उभरीं। शायद उसे मेरी बात पर कुछ विश्वास आ रहा था। शायद वह कहना चाहता था कि पिछला संग्रह किया हुआ धन तो आधे से अधिक मसूरी में ही खत्म हो गया। शेष रुपये यहां रूई की भाँति उड़ते जा रहे हैं। आखिर एक दिन जब समस्त पूँजी खर्च हो जायगी, उस समय इस आतिथ्य के साधन कहां से आयँगे ? ये मालपूए, ये आम—ये सब कहां से आयँगे ?

अर्चना बराबर हँस रही थी। सचमुच वह पगली ही तो थी। याचना बोली—"तुम्हें इतनी हँसी क्यों आ रही है, अर्चना ?"

अर्चना ने संभल कर कहा, "पापा जी अब तक कालिज में संस्कृत पढ़ाते रहे। अब वे कविता लिखेंगे। क्योंकि किसी कालिज में उन्हें संस्कृत की प्रोफेसरी मिलती नज़र नहीं आती। और मुझे...."

"कहो—आगे कहो," याचना ने चिल्ला कर कहा !

"कहो—बात पूरी तो करो," अर्चना की मां भी चिल्लाई।

"अच्छा कहती हूँ," अर्चना कहने लगी थी," मैंने दो वर्ष तक उदयशंकर से नृत्य-कला की शिक्षा प्राप्त की। फिर दो वर्ष तक मेरी शिक्षा रुकी रही। तो भी किसी न किसी तरह मैं नृत्य की एकसूत्रता में बंधी रही हूँ। अब मेरे सामने नई समस्या है। पापाजी के नये मित्र आनन्दनाथ कह रहे हैं कि यदि मेरी उंगलियां टाइपराइटर पर चलना स्वीकार कर सकें तो वे मुझे अपने दफ्तर में टाइपिस्ट की जगह दे सकते हैं।"

मैंने यह पूछना मुनासिब न समझा कि ये आनन्दनाथ कौन हैं। उधर से याचना बोली—"आनन्दनाथ तो मुझे भी टाइपिस्ट बनाने की बात सुझा रहे हैं।"

श्यामली सरक कर मां के साथ सट गई। शायद वह किसी भी दशा में टाइपिस्ट बनने के लिये तैयार न थी।

रूपम् ने बात का रुख बदलते हुए कहा—"मालपुए तो ख़त्म हो गये। अब आम काटो, अर्चना!"

अर्चना उस समय आम काटने की बजाय आम खाने के लिए ही तैयार हो सकती थी। याचना आम काट-काट कर प्लेटों में रखने लगी। अर्चना की मां बोली—"अब बातें पीछे कीजिए, पहले आम खा लीजिए।"

सभी बढ़-बढ़ कर हाथ चलाने लगे। मुझ से न रहा गया। मैंने संभल कर कहा—"उन्मूलन ही इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप है।"

"मैं उन्मूलन पर एक कविता लिखने जा रहा हूँ," रूपम कह उठा।

"कविता लिखने से न आपको इससे अच्छा पारिश्रमिक मिलेगा, और न उन्मूलन ही रुकेगा," मैंने व्यंग्य कसा।

"ये सब बातें कवि को कविता लिखने से नहीं रोक सकतीं," रूपम् आम की फाँक को मुँह के समीप ले जाते हुए कह उठा।

मैंने कहा—"अर्चना के लिए नृत्य छोड़ कर टाइपिस्ट बनने का सुझाव भी ऐसा ही है। यह बड़ा अभिशाप है। जीवन का इससे बड़ा अभिशाप और हो ही क्या सकता है? भयंकर आँधी और तूफ़ान के लिए हम प्रकृति को क्षमा नहीं कर सकते। कवि लाख बैठा प्रकृति के सौंदर्य का बखान करता रहे, पर प्रकृति तो प्रकृति है। एक दिन अपना वास्तविक रूप दिखाये बिना नहीं टलती। एक दिन वह साफ़-साफ़ बता देती है कि उसे मानव के हाथों पालतू बनना बिलकुल नापसन्द है। अर्थात् वह अपना वास्तविक रूप कभी नहीं भूल सकती। कोई कालिदास हो चाहे वर्डस्वर्थ या शैले—वे लाख प्रकृति की प्रशंसा के पुल बाँधें। पर इससे क्या होता है? प्रकृति अपने स्वभाव से बाज़ नहीं आती। सभ्यता लाख आगे बढ़ जाय। आँधी और तूफ़ान तो आते ही रहेंगे। घृणा, क्रोध, द्वंद्व और हिंसा की आँधियां तो और भी भयंकर होती हैं। सभ्यता लाख नाज़ करे। ये आँधियां तो किसी के रोके नहीं रुकने की। ये तूफ़ान तो अवश्य आते रहेंगे। जैसे मानवता के उन्मूलन में ही इन आँधियों और तूफ़ानों को मज़ा आता हो।"

"आप भी तो आम खाइए न," अर्चना ने मेरी तरफ़ आम की प्लेट बढ़ाते हुए कहा। उस समय उसकी हँसी कम हो गई थी। उसके ओठों पर मुस्कान तक का कहीं कोई चिह्न नहीं था। केवल सरलता की मुद्रा थी जिस की पृष्ठभूमि में किसी कपट की कल्पना भी न हो सकती थी। शायद वह आँखों ही आँखों में यह कहना चाहती थी कि मैं अपने आदर्श पर डट कर खड़ी रहूँगी और यदि मैं जीवित रही तो देश की चिरन्तन नृत्य कला के उत्थान में अवश्य सहयोग दूँगी। आनन्दनाथ के दफ़्तर में टाइपिस्ट बनने के लिए मेरा जन्म नहीं हुआ है।

रूपम् कह रहा था—"याचना तो टाईप सीखना मान गई

है, अर्चना भी मान जायगी। संगीत और नृत्य से तो टाईप बहुत सहज है।"

अर्चना की मां कह उठी—"जीवन में समझौता तो करना ही पड़ता है।"

मैंने व्यंग्य कसा—"समझौते की भी आपने एक ही कही। यह तो ऐसे ही है जैसे गुलमोहर के वृक्ष को काट कर उसके शहतीर बना लिए जायँ। अब आप ही बताइए कि प्रकृति तो यही चाहती है कि गुलमोहर के पुष्प खिल कर चित्रपट में रंग भर दें। यह कुल्हाड़े का वार तो प्रकृति को कभी रुचिकर नहीं हो सकता।"

"हाँ, हाँ," अर्चना की माँ कह उठी, "शहतीर बनाने के लिए और वृक्षों की कमी थोड़ी है।"

मैंने कहा—"टाइपिस्ट बनने के लिए भी और लड़कियों की कमी नहीं।"

"हाँ, हाँ," अर्चना की माँ ने मेरा समर्थन करते हुए कहा, "पर जीवन तो जीवन है, मधुर भी और कड़वा भी। समझौता तो करना ही पड़ता है।"

मैंने रूपम् के समीप सरकते हुए कहा—"आपको फिर संस्कृत की प्रोफेसरी ढूँढनी चाहिए। कविता लिख कर बात नहीं बनने की। एक जगह एक प्रोफेसर चाहिए। मैं पूछ कर बताऊँगा।"

रूपम् के मुख से एक भी शब्द न निकला। पर अर्चना की माँ कह उठी—"आप इन्हें प्रोफेसरी दिला दें तो हमारी सब समस्याएँ सुलझ जाय।"

अर्चना के मुख पर मूक मुद्रा सवाक् होती दिखाई दी। शायद वह कहना चाहती थी कि यदि पापा जी को प्रोफेसरी मिल जाय तो गुलमोहर के पेड़ सड़क पर खड़े-खड़े पुष्पों का प्रदर्शन किया करेंगे। वह यह विश्वास दिलाना चाहती थी कि पापाजी

को प्रोफेसरी दिला कर आप भारतीय नृत्य कला के भविष्य को उज्ज्वल करेंगे। क्योंकि उस अवस्था में मुझे आनन्दनाथ के दफ़तर में टाइपिस्ट बनने पर मजबूर नहीं होना पड़ेगा। फिर उसकी मुद्रा बदल गई जैसे वह कह रही हो कि—मैं साफ़ बता दूँ कि यदि पापा जी को प्रोफेसरी न भी मिली तो भी मैं टाइपिस्ट न बनूँगी। इससे तो आत्महत्या का मार्ग ही सहज होगा।

याचना की मुद्रा मानो यह कह रही थी कि पापा जी को फिर से प्रोफेसरी मिल गई तो समझ लीजिए कि भारतीय संगीत का भविष्य भी उज्ज्वल है, क्योंकि मैं भी टाइप राइटर पर उंगलियाँ चलाने की बजाय वीणा पर उंगलियाँ चलाने में अपने जीवन को अधिक सार्थक समझूँगी।

श्यामली और दलीप सट कर एक ही कुर्सी पर बैठे थे। उन्हें शायद यह प्रतीक्षा थी कि उनके पापा जी कब कोई कविता सुनाना आरम्भ करते हैं। बहुत-सी कविताओं के कुछ-कुछ शब्द तो उन्हें कंठस्थ हो गये थे। क्योंकि बार-बार सुनाई हुई, और इस प्रकार प्रभाव की दृष्टि से खूब परखी हुई, कविताएँ सुनाने में ही उन्हें तृप्ति होती थी।

मालपूओं की भांति आम भी सब खत्म हो गये थे। वर्षा भी थम गई थी। मैं उठ कर खड़ा हो गया। अर्चना पानी के लिए दौड़ी। बड़े उत्साह से उसने हमारे हाथ धुलाये। मैंने सब का धन्यवाद किया। रूपम् बराबर कहे जा रहा था—"इतनी क्या जल्दी है। अभी बैठिए।"

"कभी फिर आऊँगा," मैंने छुट्टी लेते हुए कहा—"अब आप लोग बैठिए। मैं चला जाऊँगा।"

अर्चना की माँ कह उठी—"आप इस कोठी का रास्ता भूल तो नहीं जायेंगे?"

मैंने कहा—"यह कैसे हो सकता है? कालिदास रोड तो मुझे

भी प्रिय है। हाँ, मैं इसे कालिदास रोड ही कहता हूँ क्योंकि इस के दोनों तरफ मौलसिरी के वृक्ष हैं जो महाकवि कालिदास को भी अवश्य पसंद आते। और इस कोठी को तो मैं कभी नहीं भूल सकता क्योंकि यही एक कोठी है जिसके द्वार के भीतर एक ओर दीवार से सटा हुआ एक गुलमोहर का वृक्ष खड़ा है।"

रूपम् और अर्चना मेरे साथ-साथ दाएं-बाएं चल रहे थे। और ज्यों ही हम पिछवाड़े से निकल कर द्वार की तरफ बढ़े तो हमारे हृदयों पर तमाचा-सा लगा। गुलमोहर का [illegible] जड़ से उखड़ कर दीवार के ऊपर गिरा पड़ा था और इससे दीवार भी टूट गई थी।

अर्चना ने गुलमोहर के गिरे हुए वृक्ष की ओर बड़ी [illegible] दृष्टि से देखा। फिर उसकी दृष्टि रूपम् की ओर घूम गई [illegible] वह कहना चाहती हो—आज का इन्सान भी तो इसी तरह जड़ से उखड़ा जा रहा है पापा जी !

रंग, तूलिका और अकाल

अजन्ता की प्रतिध्वनि—यही वह लेबिल था जो उसकी कला पर हमेशा के लिए चिपका दिया गया था और अब उसने फैसला कर लिया था कि बहुत जल्द इसे उतार फेंकेगा। सवेरे उठते ही वह अपनी गंजी चिकनी खोपड़ी के तीन ओर उगे हुए बालों में उंगलियों से कंघी करता और अपने काम पर डट जाता। उसकी तूलिका किसी नये नृत्य के ताल परे थिरक उठती और रंग यों उछलते जैसे उन्हें अपनी मंज़िल नज़र आ रही हो। पर इधर कई दिनों से उसने तूलिका को छुआ तक न था।

आज भी तो वह काम पर बैठने की बजाय बाहर निकल आया था। सदा की तरह उसकी जेब में पेंसिल और हाथ में स्केचबुक थी, भले ही उसे विश्वास था कि आज भी न तो पेंसिल की आवश्यकता पड़ेगी और न ही स्केच बुक की। चलते-चलते उसकी कल्पना की सुई न जाने कैसे अजन्ता की ओर घूम गई। जैसे वह अजन्ता की एक गुफा में सामने की दीवार पर वह चित्र देख रहा हो जिसमें एक बन्दर कुछ इस तरह मुंह

बनाये बैठा था कि अभी उछल कर उस ओर लपक पड़ेगा जहां एक बंदरिया बच्चे को सीने से चिपकाये चली जा रही थी। कुछ और बन्दर दीवार पर बैठे न जाने क्या सोच रहे थे। आकाश पर बहुत से गिद्ध मंडरा रहे थे। और दूर जंगल में कहीं भेड़िये का एक जोड़ा गिन-गिन कर पैर उठा रहा था......... उसने यों ही घबरा कर अपनी चिकनी खोपड़ी पर हाथ फेरा तो कल्पना में उभरते हुए चित्र के रंग गड्ड-मड्ड हो गये। और उसने सामने के मोड़ की ओर देखा जहां बहुत बड़ी भीड़ नजर आ रही थी।

वह चाहता था कि भीड़ से बच कर निकल जाय पर रास्ता बन्द हो चुका था। पुलिस के सिपाही लोगों को मार भगाने का यत्न कर रहे थे। सामने फुटपाथ पर कुछ बनी-संवरी स्त्रियाँ चमकीले थाल उठाये खड़ी थीं। उनकी लम्बी-लम्बी आंखों की झुकी-झुकी पलकें देखकर वह एक बार फिर अजन्ता की गुफाओं में जा पहुँचा। उसका हाथ जेब की ओर लपका। वह चाहता था कि झट से एक स्केच बना डाले। पर न जाने क्या सोच कर वह उनकी ओर देखता रह गया। वे तो भगवान् की पूजा के लिये जा रही थीं और मन्दिर के रास्ते में इन कुरूप इन्सानों ने उन्हें घेर लिया था। उसे इन लोगों पर क्रोध आने लगा। ये लोग रास्ते से क्यों नहीं हट जाते? ये पुलिस के डंडों से भी नहीं डरते। वे बनी-संवरी स्त्रियाँ डर रही थीं कि इन वहशी इन्सानों की भीड़ उनके हाथों से चमकीले थाल छीन लेगी जिनमें वे मिठाइयां और पकवान भर कर लाई थीं। यह सब तो भगवान् ही के लिए था। और ये लोग, जो भगवान् का वास्ता दे रहे थे, इतना भी नहीं समझते थे कि ये पकवान तो भगवान् ही को भाते हैं। भीड़ चिल्ला रही थी। आज उसे कानून का डर न था। इस शोर में कान पड़ी आवाज सुनाई न देती थी। पर

जब कभी शोर दब जाता, तरह-तरह की चीखती चिंघाड़ती आवाजें उभरने लगतीं—मेरा नन्हा दो दिन से भूखा है...... यह बुढ़िया छः दिन से पानी के सहारे ही जी रही है...... माई जी, हमें कुछ दो! भगवान् के लिए हमें कुछ दो...... हम मर जायँगे, हम भूखे हैं, हमें केवल तुम्हारा ही आसरा है, भगवान्!

पर पुलिस ने उन्हें पकवान की बजाय डंडे खिलाये। भीड़ कुछ-कुछ छट गई। मन्दिर की ओर जानेवाली स्त्रियाँ अपने पथ पर चल पड़ीं। अब उन कुरूप इन्सानों की आवाजें और भी तेजी से उनका पीछा कर रही थीं।

वह सोच रहा था कि काश उसने वह स्केच बना लिया होता। वह इस युग का एक श्रेष्ठ चित्र होता। बनी-संवरी स्त्रियों को मैं तरह-तरह के रंगों में अंकित करता। पर इस भारी भीड़ में तो वैसा कोई रंग नजर नहीं आता। अजन्ता के चित्रकारों का ध्यान न जाने ऐसे चित्रों की ओर क्यों नहीं गया।

कल रात भी तो वह नये चित्रों की तलाश में इसी तरह भटकता रहा। उसने लड़कियों को बिकते हुए देखा था। दलालों के बाजारी मजाक उसकी आत्मा में घुसते चले गये थे। वे उन लड़कियों को टटोल-टटोल कर कह रहे थे—

हूँ, तीन बरस तो इसे और खिलाना-पिलाना होगा।

यह, हाँ खूब, भई मैं कहता हूँ यह तूफान बरपा करेगी।

अरे, यह तो कम्बख्त 'थार्ड क्वालिटी' है।

और यह, है तो सांवरी, पर सिर्फ पांच रुपये—पांच रुपये।

अरे अन्धो, पांच में तो बकरी भी नहीं आती।

और न जाने वे क्या-क्या कह रहे थे। वेश्याएँ एक-दूसरे से बाजी लेजाने की फिक्र में थीं। उनके दिल भगवान् से

रहे थे कि ऐसे ऐसे अकाल तो रोज़ पड़ें। दुकानदारी का मज़ा ही अब आता है। वे तो समझ रही थीं कि इन लड़कियों को ख़रीद कर वे भगवान् को खुश कर रही थीं। वे उन्हें न खरीदतीं तो उनके शरीर पर गिद्ध ही तो झपटते।

रह-रह कर वह अपने आप पर झुंझला उठता। आखिर वह क्यों अपना दिमाग़ इन बातों में समो रहा है? क्या बकवास है। नये चित्र बनाओ—क्यों बनाओ? अजन्ता के चित्रकारों ने भी चित्र बनाये थे। वे सब तो भगवान् बुद्ध के भिक्षु थे। पर उनके अधिकांश चित्र तो स्त्री ही के गिर्द घूमते हैं। जैसे भगवान् बुद्ध ने इन चित्रकारों की कल्पना से अनुरोध किया हो—तुम हर चित्र में सुजाता को सम्मुख रखो—सुजाता, जिसने मुझे वन-देवता समझ कर पकवान खिलाया था। उसी पकवान के कारण मैं मृत्यु के मुख से बच गया और ज्ञान प्राप्त करने में सफल हो सका। अब उस ज्ञान के कारण मैं युग-युगान्तर तक जीवित रहूँगा—यह सब सुजाता की देन है। तुम उसे जीवित। करो—तुम्हारे अध्ययन के लिए मैं यह भी बता दूँ कि सुजाता ने अपनी गोशाला की एक सौ ब्याई गौओं का दूध पचास गौओं को पिलाया था, फिर उन पचास गौओं का पच्चीस गौओं को, फिर उन पच्चीस गौओं का बारह गौओं को; फिर उन बारह गौओं का छः गौओं को, फिर उन छः गौओं के दूध में भाँति-भाँति के सुगन्धित पदार्थ मिला कर उसने खीर बनाई थी......,ऊँह! भगवान् ने कैसा बढ़िया पदार्थ खाया था, और ये भगवान् के बंदे तो शायद बिलख-बिलख कर दम तोड़ देंगे।

वह चाहता था कि कहीं किसी इन्सान की लाश नज़र आ जाय, सड़क से हट कर कहीं किसी पार्क में जहाँ उसके समीप कोई गिद्ध बैठा यह सोच रहा हो कि वह उसे सिर की ओर

से खाना शुरू करे या पैरों की ओर से। वह गिद्ध की चोंच को कुछ इस प्रकार अंकित करना चाहता था कि इससे प्रतीक की तीव्रता और भी स्पष्ट हो सके। गिद्ध भी भगवान् ने क्या खूब पक्षी बनाया है! पशुओं की बहुत सी लाशों पर तो यही गिद्ध झपटते हैं। यह उन्हीं का काम है कि दुनिया को लाशों की सड़ांद से बचाये रखें। वह धीरे-धीरे चला जा रहा था और जेब में पड़ी हुई पेन्सिल को हाथ से मसल रहा था। पार्क अभी दूर था। उसने सोचा कि वहाँ कोई लाश अवश्य मिल जायगी और शायद पास बैठा कोई गिद्ध भी। अपने स्केच में वह लाश पर झपटते हुए गिद्ध को एक नये ही दृष्टिकोण से अंकित करेगा—गिद्ध की चोंच का एक भाग और सामने एक लाश का भयानक चेहरा। प्रदर्शिनी में यह चित्र बहुत पसन्द किया जायगा। अजन्ता के चित्रकार तो आराम से स्त्रियों के चित्र बनाने में ही मगन रहे।

उसने कई बार अजन्ता की यात्रा की थी। अजन्ता की स्त्री अभी तक उसकी कल्पना में बसी हुई थी। उसे याद था कि किस प्रकार वह अजन्ता के एक चित्र में एक सुन्दरी का केशविन्यास देखकर चकित रह गया था। सहसा उसे उन कुरूप स्त्रियों का ध्यान आ गया, जिनकी छातियाँ या तो सूख चुकी थीं या इतनी लटक गई थीं कि उनकी ओर देखते रहो तो घिन-सी आने लगे।

चलते-चलते वह एक लंगर के समीप पहुँचा। जैसे बन्दरों और लंगूरों के झुंड के झुंड जमा हों। पर लंगर का द्वार एक सप्ताह के लिए बन्द कर दिया गया था। एक सप्ताह में तो दुनिया बदल सकती है। जब तक चावल आयगा, ये लोग सिसक-सिसक कर दम तोड़ चुके होंगे। सूखे पिंजर, हड्डियों के ढाँचे—ये आदमी हैं या जिन-भूत। लाख कोई डाँटे या मार-

मार कर बेहाल करे, ये डटे रहेंगे। भला भगवान् का द्वार छोड़ कर कहाँ जायँ ? यहाँ भी उसने जेब से पेंन्सिल निकाली और स्केचबुक खोली। पर उसका मस्तिष्क घने ढेर जाले बुनने में मगन रहा। किसी-किसी के शीरर पर रिसते हुए घाव नज़र आ रहे थे। उन घावों से आती हुई बदबू उसकी कल्पना से सुन्दरता की भावना को नष्ट कर रही थी। शायद अब केवल कुरूपता ही रह जाय।

वह पार्क की ओर चला जा रहा था। उसे अपनी कल्पना में अजन्ता की गुफाओं का वह चित्र नज़र आने लगा जिसमें सड़क पर से जलूस गुज़र रहा था और झरोखों से सजी-संवरी राजकुमारियाँ लम्बे कजरारे नयनों से नीचे का दृश्य देख रही थीं। कोई ओठों पर उँगली रखे चकित हो रही थी तो कोई अपनी सखी के गुदगुदी करने में मग्न थी। फिर सहसा वह चित्र न जाने कहाँ लुप्त हो गया। अब वह पार्क के सामने पहुँच चुका था। पर वहाँ उसे कोई लाश नज़र न आई। वह झुंझला उठा कि क्यों व्यर्थ ही उसने यह सिरदर्दी मोल ले ली।

उसके क़दम फिर उठने लगे। उसे कुछ मालूम न था कि वह कहाँ जायगा। फुटपाथों पर भिखारियों की छावनियाँ पड़ी हुई थीं। बचते-बचाते वह आगे ही आगे बढ़ता चला गया। अगले मोड़ पर एक मरियल-सा अखबार बेचने वाला चिल्लाये जा रहा था—चौरंगी की ट्राम पूरे पांच घंटे तक रुकी रही... भिखारियों ने ट्राम के सामने लेटना शुरू कर दिया। उसे अफ़सोस हुआ कि वह क्यों इस अवसर पर उपस्थित न था। अजन्ता के चित्रकारों ने कहां ट्राम की पटरी देखी होगी ? और वे ट्राम की पटरी पर लेट जानेवाले इन्सान........

चलते-चलते उसने ठोकर खाई। उसका पैर एक अधमरे इन्सान से टकरा गया। वह वहीं खड़ा रह गया और किसी

सोच में डूब गया। जेब से रुमाल निकाल कर नाक पर रखते हुए वह झट आगे बढ़ गया। थोड़ा आगे चल कर उसने फिर घूम कर पीछे की ओर देखा। एक कुत्ता उस अधमरे व्यक्ति को सूंघ कर पीछे हट रहा था। अभी तो शायद उस बेचारे का दम बाक़ी था और अभी कोई उस पर दाँत नहीं चला सकता था.......वह फिर चलने लगा। उसे याद आया कि अभी कुछ दिन पहले तीन सौ भिखारियों को, जो तरह-तरह की बीमारियों में फंसे हुए थे, एक हस्पताल में रखा गया था। नर्सें कुछ कह तो न सकती थीं पर उनके चेहरों पर उनके भाव पढ़े जा सकते थे। ये लोग हमें तंग करने के लिए ही शहर की ओर उमड़ पड़े हैं, नहीं तो मरने के लिए क्या गाँव बुरे हैं। कोई बताये कि भला इन्हें बचा कर व्यर्थ ही दूसरों पर बोझ क्यों डाला जाय। इन्हें तो बल्कि स्वयं ज़हर दे देना चाहिए। क्योंकि इनका काम सिवाय बीमारियाँ फैलाने के और है ही क्या?

बाज़ार में गहमागहमी थी। भिखारियों की ओर देख कर रिक्शा, विक्टोरिया, बस और ट्राम में बैठे हुए लोग नाक-भौंहें सिकोड़ रहे थे। कारों में बैठे हुए लोग हैरान थे कि सरकार इन्हें फ़ुटपाथों पर क्यों जमा होने देती है। भिखारियों के समीप से गुज़रते समय रिक्शा खींचनेवाले अधनंगे इन्सानी बैल अपने क़दम तेज़-तेज़ उठाने लगते और अपने पीछे घुंघरुओं की एक चीख़-सी छोड़ जाते। शायद वे डरते थे कि भिखारियों में से भी कुछ लोग रिक्शा न खींचने लगें। फिर तो रिक्शा की मज़दूरी और भी गिर जायगी। पहले ही भला कौन सा गुज़ारा चल रहा है?

सड़क के एक नुक्कड़ पर कुछ लोग इस अकाल के लिए बंगाल के मंत्रिमंडल को कोस रहे थे। एक घुंघराले बालों वाला युवक कह रहा था—"मेरा बस चले तो इन मन्त्रियों का कान पकड़

कर कुरसियों से उठा दूँ। उँह, उन्हें क्या मालूम कि जनता किस चिड़िया का नाम है।"

सामने से चश्मेंवाला बाबू कह रहा था—"ख़ुद वाइसराय ही को चाहिए था कि यहां आता और अकाल का इलाज करता।"

तीसरा व्यक्ति दाँये हाथ की उँगलियों से माथे को सहलाता हुआ बोल उठा—"वाइसराय को क्यों दोष देते हो? यह चोर बाज़ार चलाने वाले नफाख़ोर बनिये तो अपने स्वदेशी भाई हैं। ये लोग ख़ुद देश को लूट रहे हैं।"

चौथे साथी ने शह दी—"पर उन्हें याद रखना चाहिए कि जनता आयगी.........जनता आ रही है.........जनता को कोई नहीं रोक सकता।"

दूसरी ओर से ट्राम आ रही थी। वह लपक कर ट्राम की ओर बढ़ा और उसके रुकते ही उसमें कूद गया। वह कन्डक्टर से कहना चाहता था—चलते-चलते थक गया हूँ। बस अगले बाज़ार तक ले चलो। फिर न जाने क्या सोच कर वह कह उठा—"चौरंगी।"

और अब टिकिट ले कर वह चौरंगी जा रहा था। उसे मालूम था कि आगे चल कर चौरंगी की ट्राम बदलनी होगी। ट्राम में लोग उन्हीं भिखारियों की बातें कर रहे थे। कुछ लोग इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि उन्हें ज़बरदस्ती शहर से निकाल देना चाहिए, नहीं तो वे हमारा जीना दूभर कर देंगे। अब भला कोई उनसे पूछे कि ट्राम की पटरी पर लेट कर लोगों से ज़बरदस्ती भीख मांगने का क्या मतलब? इस तरह तो शहर का कारोबार ही रुक जायगा। कुछ लोग कह रहे थे कि उन्हें हस्पतालों में ले जाना चाहिए। कुछ कह रहे थे कि उनके लिए शहर से बाहर लंगरों का प्रबंध करना चाहिए।

ट्राम की खिड़की में वह फुटपाथों पर पड़े भिखारियों की ओर देखता चला गया। बच्चों के पेट पानी पी-पी कर फूल गये थे, उनके जिस्म पर कहीं मास नजर न आता था। बच्चे माताओं की छातियों को चचोड़े जा रहे थे। पर अब उन से दूध की जगह लहू भी न निकल सकता था। वह यह देख कर थोड़ा भी चकित न हुआ कि भिखारियों में जवान लड़कियाँ बहुत कम नज़र आती हैं। वह जानता था कि ये तो विलास के अड्डों में पहुँच चुकी हैं। यह सोच कर उसके दिमाग़ में धचका-सा लगा। फिर उसकी कल्पना अजन्ता की ओर घूम गई। चित्र ही चित्र—दो हज़ार वर्ष पुराने चित्र। जैसे अब तक उनमें जीवन साँस ले रहा हो। किसी सुजाता की बेटी के ब्याह की खुशी में थई-थई नाच हो रहा है...........और वह सामने तो कोई विरहिणी है...........छातियाँ गोल-गोल, पोर-पोर मोती, पैरों में पायल—पर उसका शृङ्गार तो व्यर्थ है.... और वह राजमहल का दृश्य। राजा सिंहासन पर बैठा है। रानी भी पास है। मंडप में राजनर्तकी नाच रही है, जिसके साथ-साथ दो और नर्तकियां खड़ी हैं ताकि तान पलट में रंग जमा सकें...........और वह सामने राजा तलवार सूंते खड़ा है, रानी उसके पैरों में पड़ी प्राणों की भिक्षा मांग रही है........ और वह उस ओर लाजभरे नयनों और गोल-गोल मटकियों सी छातियों वाली कोई राजकुमारी अकालमृत्यु का शिकार हो रही है। पास खड़ी दासियों के मुख पर विषाद की रेखाएँ दौड़ गईं.........और फिर सहसा ट्राम का धचका लगने से वह वास्तविकता की दुनिया में आ पहुँचा। उसे यों अनुभव हुआ जैसे वही मृत्यु जिसकी छाया राजकुमारी के मुख पर फैल रही थी, यहां इन भिखारियों के चेहरों पर नज़र आ रही है। कम से कम उनकी जवान लड़कियाँ तो मृत्यु के मुख से

बच गईं। अब विलास के अड्डों में वे भी वही शृङ्गार करेंगी जो अजन्ता की महारानियों और राजकुमारियों को प्राप्त थे। और वे भी वही नाच नाचेंगी जो अजन्ता की लड़कियाँ नाचती थीं।

एक झटके के साथ ट्राम एक जगह रुकी तो किसी ने उसका कंधा झंझोड़ कर कहा—"चौरंगी के लिए यहाँ बदलिये।"

वह झट उतर कर सामने खड़ी ट्राम में जा बैठा।

इस ट्राम में भी भीड़ थी। न जाने इतने लोग कहाँ जा रहे थे। बहुत-से लोग तो शायद इसीलिए ट्राम पर सवार हो गये थे कि फुटपाथों पर चल सकना अब यों भी असंभव था।

चौरंगी में ट्राम से उतर कर उसे पता चला कि सांझ हो आई है। सामने खंभे के पास एक युवती मुर्शिदाबादी रेशमी साड़ी पहने खड़ी थी। न जाने वह किसकी बाट जोह रही थी।

दूसरे खंभे के पास खड़े कुछ लोग किसी समस्या पर वाद-विवाद कर रहे थे। चौरंगी चौरंगी है, उसने सोचा, यह बात न कालेज स्ट्रीट में है और न चितरंजन एवेन्यू में, न ईडन गार्डेन में न झील पर। सारे देश की राजनीति पर तो इसी चौरंगी में बहस की जाती हैं। हज़ारों सवाल रोज़ पूछे जाते हैं और रोज़ उनके जवाब बदल-बदल कर दिये जाते हैं।

समीप ही एक गोरा खड़ा था जिसके कान किसी नाच-गान की धुन सुनना चाहते थे और आँखें सौन्दर्य की भूखी थीं। जैसे वह प्रेम के अतिरिक्त किसी दूसरे विषय पर सोच ही न सकता हो। जैसे वह पूछना चाहता हो कि दुनिया में लड़कियों की कमी क्यों हो रही है और अब मैं होटेल या सिनेमा में जाना चाहूँ भी तो अकेला कैसे जा सकता हूँ।

सामने न जाने कहाँ की ट्राम तैयार हो रही थी। वह बिना कुछ सोचे उसमें जा बैठा। जेब में हाथ डाल कर पेंसिल को

मसलता रहा। स्केचबुक का कवर और भी मैला हो गया था। बत्तियां जगमगा रही थीं और इस प्रकाश में भिखारियों के चेहरों पर भी कुछ-कुछ रंग उभर आया था। फुटपाथों पर पड़ी हुई लाशों पर भी जैसे इस प्रकाश ने जीवन के चिह्न पैदा कर दिये थे। पर बद्दू को तो यह प्रकाश भी न ढक सकता था। टिकट लेकर वह लोगों के चेहरों पर उस रंग की ओर निहारता रहा जो शायद जुगनुओं के समान रात के अंधकार ही में चमक सकता था। पर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसे कुछ पता न चला कि कहाँ ट्राम खड़ी हुई और अब कहाँ-कहाँ पहुँच रही थी।

एक जगह उसने चौंक कर देखा कि ट्रामखड़ी है और सामने मंदिर से कीर्तन का शोर सुनाई दे रहा है। वह झट नीचे उतर पड़ा और न जाने क्या सोच कर मन्दिर में जा घुसा। किसी भजन के स्वर-ताल पर भक्तजन झूम रहे थे। मृदंग और झांझ के साथ भक्तों का बोल भी ऊँचा उठ जाता—

भजो राधे गोविन्द, राधे, राधे !

राधे गोविन्द भजो राधे !

एक ओर स्त्रियाँ बैठी थीं। मृदंग और झांझ के समीप बैठे हुए लोगों के न केवल सिर झूम रहे थे बल्कि उनका सारा शरीर रबड़ के गेंद के समान दब और उछल रहा था। उसने सोचा कि शायद उसका देश अब तक यही कीर्तन करता आया है। सहसा कीर्तन बन्द हो गया। फिर कुछ क्षणों के पश्चात् शंख घड़ियाल बज उठे। एक भक्त कह रहा था "आज भी मंदिर के नियम के अनुसार भगवान् का भोग बत्तीस पकवानों में परोसा गया। केलों और नारियलों की तो गिनती ही नहीं।"

पास से दूसरा भक्त बोला—"भगवान् तो सोलह क... सम्पूर्ण हैं। श्रद्धा से लगाया हुआ भोग वे सदैव स्वी...

करते हैं।"

उसे इन भक्तों पर क्रोध आ रहा था जो बाहर की दुनिया से अपरिचित थे। मंदिर को आती हुई वे स्त्रियाँ, जिन्हें भूखी भीड़ ने घेर लिया था, उसकी निगाहों में फिर गईं। भीड़ के चेहरे एक-एक करके फ़िल्म के समान उसके सामने से गुज़रने लगे—वे सब लोग जो अपने खेत छोड़ कर शहर में भीख माँगने आये थे। फिर जैसे दृश्य बदल कर एक ट्राम सामने आ गई और यही भूखी भीड़ रास्ता रोके खड़ी थी। फिर अधमरे इन्सानों की कतारें उसकी कल्पना में उभरने लगीं, जिन्हें कुत्ते सूंघ रहे थे और जिनकी ओर अभी से चीटियाँ रेंग रही थीं। फिर लाशों के अम्बार सामने आते गये जिन पर गिद्ध झपट रहे थे। उसे खयाल आया कि गिद्ध और भेड़िये तो उसने अजन्ता के एक चित्र में भी देखे थे। ऊँह! वह तो यों ही मज़ाक था और यह 'भजो राधे गोविन्द राधे राधे' की रट लगाने वाले भक्त..........जैसे लपक कर उसने वह लेबल उतार फेंका—'अजन्ता की प्रतिध्वनि!'

× × ×

उसका दृष्टि कोण एकदम बदल चुका था। नई रेखाएं, नये रंग। उसकी तूलिका जैसे इन रंगों में डुबकियां लगा कर किसी नई ही दिशा की ओर बढ़ती चली जा रही थी। उसके मित्र उस पर व्यंग कसते जैसे उन्हें विश्वास न होता हो कि ये भद्दी रेखाओं और मटमैले-से रंगोंवाले चित्र भी उसी कलाकार की रचनायें हैं जो कभी सूक्ष्म रेखाओं और कोमल रंगों के लिए प्रसिद्ध था। किसी न किसी तरह उसे अपने नये चित्रों की प्रदर्शिनी का आयोजन करने में सफलता हो गई। अकाल के दिन कभी के बीत चुके थे और इन चित्रों को देख कर बहुत से दर्शक तरह-तरह के व्यंग कसते। जैसे हर किसी को इन चित्रों से घिन-सी

आ रही हो। जैसे ये चित्र उनका मुँह चिढ़ा रहे हों और कह रहे हों—मानवता के कोढ़ पर तुम लाख रेशम की पट्टियां बाँधो, कोढ़ तो दब नहीं सकता!

पत्रों में भी इस प्रदर्शिनी पर कुछ कम व्यंग नहीं कसे गये। पर उस पर इस कटु आलोचना का कुछ प्रभाव न पड़ा। जैसे उसकी तूलिका कह रही हो—मैंने नया क्षितिज देख लिया है, अब मैं अजन्ता की ओर नहीं जा सकती!

प्रदर्शिनी के अन्तिम दिन एक कलाकार भी इन चित्रों को देखने आया। पहले तो उसे एक धचका सा लगा, उसने नाक-भौं सिकोड़ी। वह चाहता था कि अगले चित्र देखे बिना ही बाहर निकल जाय, पर जैसे पासवाले चित्र ने उंगली के इशारे से उसे अपनी ओर बुला लिया। पीछे हटने की बजाय यह कलाकार आगे की ओर बढ़ता चला गया और उसने अनुभव किया कि अब उसके अपने चित्रों के रंग भी बदल कर रहेंगे।

दोनों कलाकार एक-दूसरे के सामने खड़े थे। दोनों की आँखों में एक-दूसरे के लिए सम्मान की भावना थी। फिर इन चित्रों के कलाकार ने दूसरे कलाकार के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"चलो आज एक ऐसा आदमी भी आया जो इन चित्रों की भाषा समझ सके।"

"काश! अकाल के दिनों में मैं भी यहां होता और मेरी तूलिका भी उन दृश्यों को पकड़ सकती!" दूसरे कलाकार ने पास के एक चित्र की ओर देखते हुए कहा—"इस चित्र में तो अकाल सचमुच मुँह से बोल उठा है!"

उसने अपने इस प्रशंसक की ओर आँखें उठा कर कहा—"घबराओ नहीं, मेरे यार! तुम अपनी तूलिका को तैयार रखो, अकाल फिर भी आयगा।"

क्षमा करो, लोहे के लोगो !

तन से नंगे, पेट से भूखे मुझ जैसे कई और उम्मीदवार भी खड़े थे। टाटानगर के कारखाने में काम करने के लिए मजदूरों का चुनाव होना था। मैंने ऊपर आकाश की ओर निगाह उठाई और मुझे यों लगा कि आकाश लोहे का बहुत बड़ा कड़ाहा है, जिसे किसी ने औंधा कर रखा है। हर रोज़ यह गरम होना शुरू होता है और फिर रात में जा कर कहीं ठण्डा हो पाता है। अगले दिन फिर वही आग, वही पुरानी, आग !

मैंने सोचा हम सब उम्मीदवार एक तरह के बैल हैं और बैल भी ऐसे, जो शायद न अभी हलों के आगे जुत सकते हैं और न छकड़े ही खींच सकते हैं। किसी के चेहरे पर उछलती-नाचती खुशी का कोई चिह्न न था। क्या यों खड़े होना कोई ढिठाई है ? ढिठाई कहो चाहे कुछ और—पर खाने को कहाँ से आय ? भूख........रोज़ भूख लगती है ? पेट की आग.......हाँ पेट की आग.......यह न होता तो कौन किसी की गुलामी करता ? कौन घर छोड़ता ?

झट से कारखाने का डाक्टर बाहर निकला। अघाये हुए कबूतर की तरह वह मेरी ओर देख रहा था। जैसे वह मुझे पहले से जानता हो। सब उम्मीदवारों के सीनों पर वह उँगलियाँ बजा-बजा कर देखता जाता था। जैसे यह सीने कुम्हार के घड़े हों और उनकी मज़बूती की यह जाँच बहुत ज़रूरी हो। मेरी बारी आई तो मैं सहम गया। मेरे सीने पर डाक्टर ने तीन-चार बार रुक-रुक कर उँगलियाँ बजाईं। शायद कुछ ऐसी कुन्द-सी आवाज़ निकली जिससे खामखाह यह सन्देह हो गया कि कहीं बाल पड़ चुका है।

मैं बराबर उम्मीदवारों में खड़ा होता रहा। इतना साहस डाक्टर में भी न था कि साफ़-साफ़ कह दे—एक बार ठुकराया हुआ आदमी मजदूरों में भर्त्ती नहीं हो सकता। हर रोज़ मेरे सीने से वही कुन्द-सी आवाज़ आती और डाक्टर मुसकरा कर आगे बढ़ जाता। अच्छा खेल था। मैं मन ही मन में झुँझलाकर रह जाता। इतनी मूर्खता। आखिर यह डाक्टर अपने आप को समझता क्या है? मेरी तरह आदमी ही तो है। हाँ, आदमी। पर नहीं, ऐसा घमंडी तो शायद किसी शैतान का शागिर्द ही हो सकता है। इसे आदमी कौन कहेगा? और मैं खुद भी कहाँ का आदमी हूँ? बैल ही तो हूँ—शैतान के हल के आगे जुतने के लिये तैयार!

फिर एक दिन मेरा काम बन गया। अब मैं कारखाने का मजदूर था। लोहे की चादरें उठा-उठा कर परे तरतीब से रखते जाओ। यही रोज़ का काम था। हर रोज़ कारख़ाने से लौटता हुआ मैं अपनी उँगलियों को खोलता और बन्द करता। उनमें खास तरह की चुभन-सी होती रहती, एक जलन-सी। और हर रोज़ मेरा यह ख्याल गहरा होता जाता कि ये उँगलियाँ चादरें उठाने के लिए नहीं बनी हैं।

दास बाबू कहते थे—"तुम्हें थोड़े से सब्र, थोड़े से इन्तज़ार की ज़रूरत है। फिर तुम कारखाने के वातावरण मे हिलमिल जाओगे। उन्नति करते-करते तुम मेरी तरह खाते-पीते आदमी बन सकते हो। इधर देखो। जब मैं यहाँ आया था, चादरें उठाने से कहीं सख्त काम किया करता था। मेरा काम था तपते हुए लोहे पर हथौड़ा चलाये जाना। मैं भी घबरा जाता था, मेरी उंगलियों में भी छाले पड़ जाते थे।

"चादरें उठाते-उठाते लम्बा दिन खतम होने ही में न आता था। मेरे साथियों के हाथ खुशी से काम करते थे। ये लोग शायद इसी काम के लिए पैदा हुए थे। वे मशीन के ठीक पुर्जों की तरह थे, न तंग न ढीले। साँचों में ढले हुए उनके शरीर थे और साँचों में ही ढली हुई थीं वे सब फबतियां, जो के एक-दूसरे पर हमेशा कसते रहते थे—

"क्यों बे, पैदा हुआ था या यों ही उग आया था धरती से ?"

"भई वाह, अब बोल, बच्चू, रोशन के सामने।"

"क्यों बे, माँ का दूध पिया था या काली बकरी का ?"

"भई वाह, अब बोल, बच्चू, चिराग़ के सामने।"

"रोशन तो गधा है और चिराग़ निरा उल्लू। दोनों के जन्म पर शैतान ने मन्त्र फूँका होगा।"

"चुप बे, अब अधिक मुँह न खोल। जब तू पैदा हुआ था तो ज़रूर शैतान ने थूका होगा और कोई टिमटिमाता हुआ तारा टूट कर ज़मीन पर आ गिरा होगा। जब भी शैतान थूकता है तो ज़रूर कोई बड़ा पाजी माँ के पेट से बाहर आता है।"

रोशन और चिराग़ हमेशा बढ़-चढ़ कर हाथ दिखाते। उनका निशाना सीधा बरकत के माथे पर आ कर पड़ता। रोशन और चिराग़ के साथ भोला भी शामिल हो जाता।

चादरें उठाई जा रही हैं हाथों से, जुवान अपना काम क्यों न करे? यह तो जीवन का रस है। हँसी दिल्लगी से मशीन के पुरजों पर तेल की बूंदें टपकती रहती हैं, मशीन चलती रहती है मजे से।

पर दिन भर चादरें उठा-उठा कर रखते जाओ परे तरतीव से, यह तो वड़ा कठिन काम था। हाथ जवाव दे जाते थे। शरीर की चरवी ढलने लगती थी। दास वावू का उपदेश कानों में चुभने लगता था। थोड़ा सा सब्र, थोड़ा इन्तज़ार। लानत है इस सब्र पर, इन्तज़ार पर।

कारखाने की वड़ी-वड़ी चिमनियां काली कलूटी डाइनों की की तरह मुँह से धुएँ के वादल छोड़ती रहतीं। हवा में एक जलांद सी समाई रहती। ऐसा मालूम होता कि दुनिया भर में धुआँ ही धुआँ फ़ैल जायगा। यहाँ तक कि यह धुआँ कब्रों में भी घुस जायगा। किसी न किसी तरह और जिन्दा मज़दूरों के चेहरों की तरह आराम से पड़े हुए मुरदों के चेहरे पर भी स्याही मल कर दम लेगा। इतना धुआँ, वाप रे !

लोहे के खंभे अहंकार से सिर उठायें खड़े थे। वड़े-वड़े ऐंगिल आयरन, क़िस्म-क़िस्म के कोण वनाते हुते छत तक चले गये थे। इनका रौव भी कुछ कम न था। लोहा ही लोहा। फौलाद ही फौलाद। यह लोहे और फौलाद की दुनिया थी। यहाँ तो वही काम कर सकता था, जिसका शरीर लोहे का हो। शरीर ही नहीं, आत्मा भी लोहे की हो।

लोहे की चादरें यों देखने में चांदी को लजाती नज़र आती थीं। चादरें ही चादरें। वस उठाते चले जाओ। हाथ रुके नहीं। उठाते जाओ रखते जाओ।

वाक़ी मज़दूरों के चेहरों पर एक सन्तोष भरी मुस्कराहट नाच उठती थी। इसे देख कर मेरा तन-वदन सुलगने लगता

था। मूर्ख आदमी थक कर चकनाचूर हुये जाते हैं, फिर भी खुश हैं। इनके चाड़े उभरे हुए सीनों पर वज़नी लोहे की चोट कोई असर नहीं करती। इनके चेहरों पर कोई भय अपनी छाया नहीं फेंकता। शैतान के बैल—सदियों के ग़ुलाम। अब वे कारखाने के मज़दूर बन गये थे। धुंए के काले बादल मेरे मन पर छा जाने के लिए लपक रहे थे। इतना धुंआ, बाप रे! पर यह धुंआ बाक़ी मज़दूरों का कुछ न बिगाड़ता था। एक दिन मैंने किसी के कंधे पर हाथ थपथपाते हुये पूछ ही तो लिया—"जानते हो मैं कौन हूँ?"

"एक मज़दूर,"

"भूल चूक लेनी देनी वह छुटते ही कह उठा," मैंने ज़रा सम्भलकर कहा, "पहले हम आदमी हैं फिर कुछ और, भोला!"

और मैंने भोला को बता दिया कि कारखाने में आने से पहले मैं उस खेत की तरह था, जिसमें हल न चलाया गया हो, और जो बीज बोने से लेकर फसल काटने तक की अवस्थाओं की प्रतीक्षा कर रहा हो। यह तो न जानता था कि इतनी बुरी तरह हल चलेगा और इतने गहरे बीज बोये जायंगे। इस खेत से अब कितनी अच्छी फसल की आशा रखी जा सकती है? चादरें ही चादरें, उन्हें बस उठा उठा कर परे रखते जाओ तरतीब से।

भोंपू हमें रोज पुकारता था। ठीक समय पर हम कारखाने की ओर दौड़ पड़ते। हम सब लोग बेतरतीब परछाईं की तरह थे। वही मशीनों की खटखट, पट्टों की फटफट और बॉयलरों में जमा हुई भाप की भप-भप—ये सब आवाज़ें हमारा मज़ाक उड़ाती रहती थीं। चिमनियों का धुंआ हमारे साँस का साथी बन गया था। और कभी न खत्म होने वाली सड़ांध जैसे हमेशा के लिए हमारी रूह में समाने के लिये लपकती रहती।

कारखाने का कठिन काम करते हुए मेरा मन घंटे के लटकन की तरह, जो निश्चित स्थान पर पहुँचने के लिए अपनी चाल जारी रखता है, बराबर अपने वातावरण की आलोचना में मग्न रहता था। आज एक मजदूर खौलते हुए लोहे में गिर कर खत्म हो जाता है। फिर देखते ही देखते दूसरा आदमी उसकी जगह ले लेता है। मशीनें चलती रहती हैं। यह वातावरण बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं को भी ख्याल में नहीं लाता। दुर्घटनाएं तो होती ही आई हैं और होती ही रहेंगी। किस-किस मरने वाले का नाम याद रखा जाय? किस-किस की याद में आँसू बहाये जायँ? भला हो निर्धन स्त्रियों का जो बालकों को जन्म देते कभी उकताती नहीं। ये बालक बड़े हो कर कारखानों की ओर दौड़ पड़ते हैं। पेट की भूख और भोंपू की पुकार। नये मज़दूर कारखाने के दरवाज़े पर नाक रगड़ने तक में संकोच नहीं करते। कारखाने के अन्दर किस प्रकार मज़दूरों की चरबी ढलती है, उनके कभी-कभी पैदा होने वाले प्रतिशोध को किस तरह पैरों तले रौंद दिया जाता है, किस प्रकार उनके परिश्रम के बल पर कारखाने का मालिक लखपति या करोड़पति बन जाता है—यह एक लम्बी कहानी है। मज़दूर की विपदा शायद दर्द के उस उतार-चढ़ाव के समान है जिसका अनुभव गर्भवती के लिये आवश्यक है। हर नये जीवन के जन्म के पश्चात् मानव इतिहास को प्रसूता स्त्री के समान पूरा आराम प्राप्त हो जाता होगा। इधर मुझे अपनी शिक्षा पर भी बुरी तरह क्रोध आने लगता।

भोला कहता था कि धनी और निर्धन का अन्तर शुरू दुनिया से चला आया है। यह कभी मिटने का नहीं। इसे सिद्ध करने के लिए वह अपनी नानी से सुनी हुई कहानी छेड़ देता—

"पार्वती बोली—महादेवजी! संसार को आप एक सा

कर दो। कोई तो कमाता-कमाता हारा जाय है और कोई गुल-छर्रे उड़ाय है। आप एक काम करो। सब संसार को एक सा कर दो।

"महादेव हँस पड़े--संसार का काम फिर किस तरह से चलेगा।

"पार्वती ने हठ न छोड़ा। महादेव की माया तो ठहरी अपरम्पार। उन्होंने पलभर में सारी संसार एक सा कर दिया और पार्वती ने महादेव के पैर पकड़ लिये।

"महादेव बोले—अब एक काम करो, पार्वती। कहीं से दो चार मजदूर ले आओ छप्पर छवायेंगे। जाड़ा तो भागा आ रहा है सिर पर पैर रख कर।

"अब मजदूर कहाँ मिलते? सभी तो अपने अपने सेठ बने बैठे थे।

"महादेव सब बातें समझते थे। बोले—मैंने तो उसी समय कह दिया था कि संसार का काम रुक जायगा। आरंभ में जैसे संसार बनाया गया था वह बहुत सोच-समझ कर बनाया गया था।

"पार्वती ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज! जैसा संसार पहले था, वैसी ही फिर बना दो, न उस से रत्ती भर बुरा न उस से रत्ती भर अच्छा।

"महादेव की माया। संसार ने फिर पुराना रूप धारण कर लिया।"

सब मजदूर भगवान् और भाग्य के अन्धे पुजारी थे। उनका डर उन्हें मारे डालता था। उनके विरुद्ध वे ज़बान न खोल सकते थे। आये दिन कारखाने की मशीनें आदमी के गरम-गरम लहू का तावान लेती रहती थीं। उसे बरदाश्त कर लिया जाता था। भगवान् की यही मर्जी थी। जीवन के चलते पहिए चकनाचूर हो

जाते हैं तो क्या परवाह है?—भाग्य के लेख को कौन मिटा सकता है? हाय रे भगवान्, हार रे भाग्य, और लहू की प्यासी मशीनें!

सारे मज़दूर मानों लोहे के टुकड़े थे। एक बड़ा-सा अहरन पड़ा था, जिस पर ये टुकड़े बारी-बारी से गरम करके रखे जाते थे। किसी के ज़बरदस्त हाथ घन की भयानक चोटों से इन्हें आवश्यकता के अनुसार रूप देते जाते........बड़े-बड़े अफ़सर अकड़े–अकड़े आते और चले जाते मशीनें अपना काम किये जातीं और लोहे के आदमी दिन रात मौत के मुँह में हाथ डालते रहते।

गरमी के दिन थे। लू अपने साथ रेत के अनेक ज़र्रे लिये उड़ती-उड़ती आती। सूर्य की आग में झुलसे हुये ये ज़र्रे हमारे चेहरों पर भी चिपक जाते। चेहरों पर ही नहीं, मुँह के अंदर घुस कर ज़बान पर भी अधिकार जमा लेते। शायद ये रेत के ज़र्रे ही थे जिनके कारण मेरी पाचन-शक्ति कमज़ोर पड़ती जाती थी। आम की चटनी अब इतनी खट्टी न रह गई थी। गुड़ भी अब न ललचाता। रेत के ज़र्रे, शायद घायल कबूतरों की तरह फड़फड़ाते हमारे फेफड़ों तक जा पहुंचते। कारखाने का धुँआ अलग सताता रहता। हमारे फेफड़े लोहे के तो न थे कि इन पर लोहे और धुँए का कोई असर न होता।

कारखाने के उच्च अधिकारी खुश थे। उनके घर ईंट, सीमेंट, लोहे और लकड़ी के थे। उनकी स्त्रियाँ बारीक सुन्दर रंगों की साड़ियाँ पहन सकती थीं, मुस्करा सकती थीं और देखने वालों के दिल में यह विचार उत्पन्न कर सकती थीं कि उन पर सदा यौवन की पुट चढ़ी रहेगी। पर मज़दूरों की बस्तियां उनके अपने शरीर की तरह अधनंगी थीं। बच्चों को देखकर हृदय कहता कि उनकी उमर अब नंगी चमड़ी में ही गुज़रेगी जिसके साथ

उन्होंने संसार में प्रवेश किया था। स्त्रियों की धोतियाँ ही उनकी साड़ियाँ थीं। अपने बालों में वे तेल लेतीं, पर धूल और कारखाने के धुँए से गन्दे पड़ जाने पर वे अपने बालों की सफाई के लिए साबुन न खरीद सकतीं। कारखाने में काम करती हुई किसी लड़की को देख कर मुझे झट ख्याल आता कि उसकी मुक्त मुस्कान का युग बहुत दिन तक टिकने का नहीं, साथ ही झट यह ध्यान आता कि उसका यौवन भी अधिक दिन का मेहमान नहीं और खराद से अभी-अभी उतरे हुए लोहे के पुर्जे की तरह उसके मन पर भी एक दिन जंग चढ़ जायगा।

मैं चाहता था इस जीवन से भाग जाऊँ और वह इस शर्त पर कि कुछ और मजदूर भी मेरा साथ दें। वे कहते—रूई कहीं भी उड़ कर चली जाय, उसे धुनिए से जरूर वास्ता पड़ेगा। धुनिए की आँख बचा कर रूई किधर जा सकती है भला? उनका विचार था कि रोटी मिल रही है और अब यहीं रहना होगा। अब यही हमारा घर है।

इतने मजदूर कहाँ से चले आये थे इधर? क्या वे अपने-अपने गांव में पेट की लड़ाई न लड़ सकते थे, जहाँ एक दिन उनका जन्म हुआ था? धरती माता तो सदियों से भूखों को रोटी देती आई थी। अब क्या हो गया था उसे? धरती ने उन्हें छोड़ा हो या नहीं, उन्होंने जरूर उसे छोड़ दिया था। जाने कैसी तेज हवा उन्हें इधर उड़ा लाई थी?

बहुत से मजदूर अपने जीवन को चुपड़ी हुई रोटी से उपमा दे सकते थे तो बस अपनी पत्नियों के कारण, जो उनके साथ चली आई थीं। चिराग तो कहता था—आदमी जान तोड़ कर मेहनत करता है तो इसी लिए कि उसकी लुगाई उसका सिक्का मानती रहे। अगर अभी तक उसका ब्याह नहीं हुआ तो कोई

कहीं ठिकाना कर दे। कुछ लोग स्त्री को धौंकनी समझते थे, जिसके बिना जीवन की भट्टी में आग न फूँकी जा सकती थी, काले-काले कोयलों को सोने का रूप न दिया जा सकता था। स्त्री की चर्चा तो होती ही रहती थी। प्याज़ के छिलके उतारने के समान। हर नया छिलका पहले से कहीं सुन्दर, कहीं नरम।

किसी मजदूर का ब्याह होता तो आतिशबाज़ी पर बहुत ज़ोर दिया जाता। पटाख़ों के धमाके, अनारों के तमाशे, छछूंदरों और हवाइयों के खेल। संसार की जीवन भी तो एक तरह की आतिशबाज़ी है। स्त्रियाँ छछूंदरें और हवाइयाँ हैं, तो मर्द पटाख़े और अनार।

चिराग़ के ब्याह पर पटाखे छोड़े गये, और शायद ये उन पटाखों के कारण ही था कि कारख़ाने के मशीनी जीवन से तंग आ कर मैंने एक दिन अपने मित्रों के बीच में एक पटाखा छोड़ दिया—"क्या किसी तरह इस लोहे और फौलाद के संसार से हमें मुक्ति नहीं मिल सकती ?"

सब के मुंह खुले के खुले रह गये। यह एक नया खयाल था। वे तो लोहे के साथ लोहा बन चुके थे और फौलाद के साथ फौलाद। यह कौन था जिसे लोहे और फौलाद के मुक़ाबले में अपना शरीर मांस का बना हुआ नज़र आता था, जिसे अब तक अपने खून से प्यार था ?

रोशन ने बड़ी घृणा से अपने कन्धे फड़काये और शरीर की सब हरकतों को सिमटा कर एक घृणा भरी छी का रूप देते हुए बोला—"भाग कर कहाँ जायगा, बच्चू ?"

बरकत बोला—"और वे लाल पगड़ी वाले याद नहीं ?"

"बच्चू, तू तो अभी कुंवारा है," चिराग़ कह उठा, "जिधर मुँह होगा चला जायगा। मेरे तो लुगाई आई है नई-नई।"

पर भोला खामोश रहा। वह उखड़ी-उखड़ी आँखों से

मेरी ओर देखता रहा। मैंने सोचा कि और कोई जाय न जाय, भोला ज़रूर जायगा। साथ ही यह भी ख्याल आया कि पटाखे की आवाज़ बहुत धीमी पड़ गई है और उसका धुआँ इधर-उधर फैल कर कारखाने के बाकी वातावरण में समा गया है। ठीक उसी प्रकार जैसे हमारी छोटी-छोटी बातें हर रोज़ मशीनों की टप-टप और खड़प-खड़प में लीन होती रहती थीं।

शाम को मैं अपनी उँगलियों को रोज़ की तरह खोलता और बन्द करता हुआ कारखाने से लौट रहा था। पीछे से किसी ने कन्धे पर हाथ रख दिया। मुड़ कर देखा कि मेरे समीप भोला खड़ा है। आगे-पीछे देखता हुआ वह बोला—"क्या इरादा है फिर ?"

उस समय मुझे यह अनुभव हुआ कि भोला, जो मेरी तरह लुगाई के बगैर है, मेरा साथी बनने की पूरी योग्यता रखता है।

: २ :

रात के अन्धकार में जंगला फाँद कर हम प्लेटफार्म पर जा पहुँचे। सबसे पहले जो गाड़ी आई, उसका मुँह खड़गपुर की ओर था। भोला बहुत खुश नज़र आता था। घर की याद उसे गुदगुदा रही थी। वह अपनी धरती पर हल चलायगा। जीते जी उसे छोड़ कर बाहर न आयगा। यहाँ तक कि उसका मांस ढल-ढल कर उसके खेतों की मिट्टी में समा जायगा। मैंने सोचा कि अपने मज़दूर बेटे को वापस आते देख कर धरती माता खुश हो जायगी। यदि भोला के भाई उसके खेत दबा बैठे हों तो वह उन्हें वापस लेकर छोड़ेगा। धरती कोई रोटी का टुकड़ा तो है नहीं कि कोई उसे मुँह में डाल ले। वह सदा के लिए किसान बन जायगा। क्योंकि जब किसी के खून में

खेतों की मिट्टी बोल उठती है तो वह पुरखाओं के समान हल को सौ-सौ नमस्कार करता है।

खड़गपुर में हमने गाड़ी बदल ली। कोई टिकट चेकर न आया था। डर कुछ हल्का पड़ गया था। मैंने सोचा कि चेकर तो किसी भी समय आ सकता है और वह हमें कान से पकड़ लेगा, गाड़ी से उतार देगा। गाड़ी दनदनाती हुई जा रही थी। मैं डरता था कि घर पहुंच कर पिता जी को कैसे मुँह दिखाऊँगा, माँ के सामने कैसे आँखें उठाऊँगा ?

भोला मुँह खोले खिड़की से चाँदनी में नहाये हुए खेत देख रहा था। कोई और समय होता तो मैं उसकी खूब खबर लेता इस तरह तो रोटी के निवाले उड़ कर आने से रहे। उसका मुँह एक तंग और अंधेरे दर्रे के समान था। मैं अपने विचारों में गुम हो गया। जैसे किसी पहाड़ी दर्रे में से खुराक के छकड़े गुजरने का दृश्य मेरी आँखों में घूमता चला जा रहा हो। छकड़े ही छकड़े न जाने किधर आ रहे थे, इतने छकड़े ? और फिर भोला की ओर देखा तो उसका मुँह बराबर खुला हुआ था, भोजन के एक भी छकड़े ने इस दर्रे में प्रवेश न किया था।

गाड़ी ऐक्सप्रेस थी। जब किसी स्टेशन पर यह गाड़ी रुकती तो हम खिड़की से सिर निकाल कर देखते और जब किसी प्लेटफार्म पर कोई चेकर नजर आता तो हम सहम कर रह जाते। ऐसे अवसरों पर लहू की कुछ बूँदें शरीर के अन्दर ही अन्दर खुश्क हो जातीं, भस्म हो जातीं। तीन-चार बार हम ने बड़ी होशियारी से डिब्बा बदल लिया और चैकर के पंजे से बच निकले।

हमारी आंतें मिनमिना रही थीं। हमारे शरीर लावा उगलने वाले पहाड़ों के समान ही तो थे।

यह सोच कर कि एक-एक क्षण उसे उसके खेतों के समीप

लिए जा रहा था, भोला अपनी भूख को दबाने का प्रयत्न कर रहा था। कहाँ लोहे की मशीनें जो आदमी का लहू तक पी जायँ और कहाँ धरती माता का स्पर्श जो न जाने कब से मूक आशीर्वाद का रूप धारण करता आ रहा था। अपने हल, अपने बैल, अपनी भैंसें। और इसके मुक़ाबले में कारखाने मे लोहे और फौलाद के इशारों पर नाचते रहना मानवता का अपमान ही तो था। अँतड़ियाँ थक-हार कर मिनमिनाने से भी रह गई थीं।

अचानक एक टिकट चेकर डिब्बे में घुस आया। भोला सिकुड़ कर बैठ गया। मैंने बहुत कोशिश की कि अपने चेहरे पर भय के चिह्न न पैदा होने दूँ। टिकट चेकर भोला के सामने आ पहुँचा। भोला चुप था। टिकट चेकर बिगड़ कर बोला—"अबे ओ गधे, सुनता नहीं ? टिकट ?"

भोला घबराया—"टिकट तो नहीं है, बाबू जी।"

"बाबू जी का बच्चा, टिकट नहीं तो गाड़ी में क्यों बैठा ? तेरे बाप की गाड़ी है बोल ?"

"नहीं बाबू जी, रेल के माई बाप तो आप........."

चेकर ने भोला के गाल पर एक चपत दे मारी। मैं घबराया। चेकर ने गरज कर कहा—"आज मज़ा चखना, हरामी !"

भोला तो धरती का बेटा था। अनगिनित सदियों से धरती ऐसी सैकड़ों चपतें सहती आई थी और अपनी सहनशक्ति धरती ने अपने बेटों को भी दे रखी थी।

फिर चेकर ने मुझ से टिकट माँगा। वह समझ चुका था कि टिकट मेरे पास भी नहीं है। इतने में गाड़ी रुक गई। चेकर ने घूर कर मेरी ओर देखा। जैसे वह कोई जादू जानता हो और एक ही इशारे में मेरा सारा लहू निचोड़ सकता हो।

गाड़ी से उतार कर चेकर ने हम दोनों को रेलवे पुलिस के हवाले कर दिया। यह कोई जंकशन था। बड़ी रोशनी थी।

बल्ब ही बल्ब । लम्बी-लम्बी पटरियाँ । बड़े-बड़े पुल । दो सिपाही हमें साथ-साथ लिए फिरते थे । वे हमें थानेदार के पास ले गये ।

: ३ :

थानेदार का हुलिया बहुत घिनौना था—कारखाने के फोरमैन और डिब्बे के चैकर से भी घिनौना । कई सौ मील का फासला होने पर भी टाटानगर की धप-धप खड़प-खड़प मेरे मन में गूंजने लगी । यह सब कुछ उस जादू-भरे सपने की तरह था जो मुझे टाटानगर में घेरे रहता था—फरार, रंगरलियाँ, देश-देश की सैर, और फिर वही चादरें उठाना !

"शैतान के बच्चे ?" थानेदार बिगड़ रहा था और हम चुप खड़े थे ।

"ले जाओ हरामियों को । रेल में चढ़ बैठे जैसे इनके बाप ने बनाई हो । अब चख लेंगे मजा कल कचहरी में ।"

"बहुत अच्छा जनाब !" यह कह कर एक सिपाही हमें स्टेशन से सटे हुए एक मकान में ले गया । यह कोई हवालात तो न थी । अन्दर एक बरामदा था और यह आदमक़द से कहीं ऊँची दीवारों से घिरा हुआ एक आँगन था । दरवाज़े को अन्दर से बड़ा-सा ताला लगा कर सिपाही ने चाबी न जाने कहाँ रख दी । वह कोई दयालु आदमी था । उसने हमें थोड़े-से भुने हुए चने दे दिये ।

"कचहरी में ठीक-ठीक बता देना । शायद माफ़ी माँगने पर ही छोड़ दिये जाओ । चुप रहने की ज़िद न करना," सिपाही हमें समझा रहा था ।

सिपाही ऐसा सोया कि खर्राटे भरने लगा । जैसे वह दिन भर घोड़े बेचता रहा हो । हमें नींद न आती थी । सुबह कचहरी

में खड़े किये जायँगे..........और फिर शायद जेल में भेज दिये जायँगे।

एक घंटा, डेढ़ घंटा, दो घंटे।

हमें नींद न आती थी। सिपाही बराबर खर्राटे भरे जा रहा था। अर्थपूर्ण दृष्टि से मैंने भोला और दीवार की ओर एक साथ देखा। चाँदनी भोला के मैले चेहरे पर सोने का पानी फेर रही थी। उसने कुछ कहे बिना सिर हिला दिया।

मैंने उसके ज़रा-सी गुदगुदी की। वह दीवार के पास जा खड़ा हुआ। मैं भी उसके पास जा पहुँचा। वह झुक गया और मैं दीवार पर हाथ टेक कर उसके कंधों पर चढ़ गया। फिर वह नीचे से तन कर खड़ा हो गया और मेरे हाथ दीवार की सतह पर जा पहुँचे। मैंने फुर्ती से काम लिया और दीवार चढ़ गया।

उसकी पगड़ी मेरे हाथ में थी। इसे नीचे लटकाया तो वह इसके सहारे ऊपर आ गया। और फिर इसी के सहारे बाहर उतर गया।

उसके कंधों पर पैर रख कर मैं भी मजे से बाहर जा पहुँचा।

अब हम स्वतन्त्र थे। हम भागते गये, भागते गये। दिल कहता था कि कोई हमारा पीछा कर रहा है। हमने पीछे मुड़ कर न देखा।

× × ×

टाटानगर के मजदूर आज भी मेरी कल्पना में उभरते हैं जैसे वे मेरा हाथ खींच कर मुझे अपने साथ मिला लेना चाहते हों। बड़ी लाचारी से मैं केवल यही कह सकता हूँ—क्षमा करो, लोहे के लोगो !

गायगी और नाचेगी। बालम, मुझे भी वे लाल-लाल फूल ला दो न नहीं तो मैं जूड़ा नहीं बाँधूगी............और यहाँ इस बालाख़ाना पर नरगिस मुस्करा रही थी। मैंने देखा कि उसके सम्मुख संथाल कुलवधू की मुस्कान फीकी पड़ गई है। पहाड़ी प्रदेशों और जंगलों में अमूल्य गान गाये जाते हैं। यहाँ गान भी बिकते थे। और स्वच्छन्द लोकगीतों के मुक़ाबिले में इस बाज़ार के गीत मुझे अनगिनत शताब्दियों से पिटते आ रहे भूखे ग़ुलामों के भेस में नज़र आ रहे थे।

एक अलाव के समान ही तो था यह संगीतगृह और हम तीनों मुसाफिर इस आग के गिर्द बैठे पाले से बचने का यत्न किये जा रहे थे। मेहता के लिए यह बालाख़ाना सब कुछ था। हनीफ़ और मैं इन गीतों के नये ग्राहक थे। और नरगिस की शराबी अंगड़ाइयाँ हमें बराबर गरमाय जा रही थीं।

जन्म ही से नरगिस आँखों में काजल डलवा कर आई थी। गहरी हरी सलवार कमीज़, इस पर नैनून का सफ़ेद दोपट्टा बटी हुई रस्सी के रूप में गले का हार बना हुआ था। गर्दन के गिर्द बालों के भरपूर लच्छे लटक रहे थे जिनसे एक भीनी-भीनी-सी सुगन्ध उड़ कर हम तक पहुँच रही थी। वह यों बैठी थी जैसे कोई देवदासी अपने देवता के वरदान से देवी बन गई हो।

मेहता ने ललचाई निगाहों से नरगिस के नींद से भरे सौंदर्य की ओर देखा। नरगिस ने एक मस्त अंगड़ाई ली। मेहता बोला—"तुम्हें यों देख कर मुझे एक शहज़ादी की बात याद आ गई, नरगिस, जो सौ साल तक पड़ी सोती रही थी। फिर एक शहज़ादा आया और उसने इस नींदों की दुलारी को जगाया।"

सारी महफ़िल में एक सूक्ष्म-सा कहकहा गूंज उठा। नरगिस के क़ुंवारे सौंदर्य से लिपटी हुई मस्ती मचलती नज़र आई। उसने

एक बार आँखें मलीं और अपने सन्दली हाथ कूल्हों की ढलान पर टिका कर खामोश निगाहों से मेहता की ओर देखा। मेहता ने फिर चुटकी ली—"तो जागने पर भी वह शहजादी पाँच-छः हफ्तों तक आँखें मलती रही होगी, नरगिस !"

नरगिस हैरान थी कि अब क्या जवाब दे। बोली—"यह भी आपने एक ही कही, मेहता साहब ! वह शहजादी यहाँ हो न हो, वह शहजादा यहाँ जरूर मौजूद है।" फिर नरगिस ने पीछे मुड़ कर उस्ताद जी को सारंगी बजाने का इशारा किया। सारंगी पर देस के स्वर गूंज उठे। अभी नरगिस के गले से स्वर न निकले थे। मेहता ने मौका पा कर अपनी बात फिर दोहराई—"आज तो मैं वह गीत सुनूंगा, नरगिस, जिसे मुगल शहजादे खुश हो कर सुना करते थे।"

नरगिस के लिए चुप रहना मुश्किल था। बोली—"इतने पुराने वक्तों का गीत मैं कहाँ से लाऊँ ?"

मेहता कह उठा—"इतने पुराने वक्तों का गीत उड़ कर कहाँ जायगा ? मेरा मतलब उस गीत से है, नरगिस, जो शहजादी ने सौ साल की नींद सोने से पहले गाया था।"

नरगिस मुस्करा रही थी। वह जरूर कोई पुराना गीत टटोल रही थी। सारंगी के तारों पर उस्ताद जी की निगाहें यों घूम रही थीं जैसे कोई बत्तख किसी तालाब की सतह पर पूरे विश्वास के साथ लकीरें और दायरे डालती चली जाती है। धीरे-धीरे एक गीत झूमता-झामता वातावरण में उभरा—

मन की तलैया सूखी पड़ी है .
एक बूँद बरसा जा.........
अब के सावन घर आ जा

गीत के समाप्त होने पर हर्नीफ ने पूछा—"क्यों जी बाई जी, यह गीत आपने रेडियो पर भी गाया था जी ?"

तबलची ने बीच में चुटकी ली—"रेडियो पर तो हमारी बाई जी यों गाती हैं, बाबूजी, जैसे चिड़िया अपने बच्चे के मुँह में दाना डालती है। और फिर लाख रेडियो बन जायँ, बाबूजी, नक़ल नक़ल है, असल असल है।"

तबलची की मुस्कराहट उभर कर ऊपर न आ सकी। तबला बजाते-बजाते उसकी जवानी बीत गई थी। उसके देखते देखते ससुरा ग्रामोफ़ोन आया और फिर यह ज़ालिम रेडियो भी आ गया। ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड किस तरह असल गाने की नक़ल उतार देते थे, यह बात उसके लिए एक पहेली बन कर रह गई थी। बाई जी सोई हों या जागी हुई, बीमार हों या अच्छी, उनका गाया हुआ रिकार्ड जब चाहो बजा लो। ये रेडियो वाले तो और भी गजब ढाते थे। बाई जी रेडियो स्टेशन पर बैठी गा रही हैं और उनका गीत घर-घर सुना जा रहा है। भला बाई जी के यहाँ अब कौन आयगा? यह मशीन का जादू उसकी समझ-बूझ से बाहर था।

नरगिस कह रही थी—"मेरी तबियत पर आज कुछ बोझ-सा पड़ा हुआ है। लेकिन आप आये हैं, मैं जरूर गाऊँगी।"

हनीफ़ ने अपने साथियों का प्रतिनिधित्व करते हुए कहा—"दैट्स आल राइट (वह सब ठीक है)। हम चलते हैं। हम नेक हैं। हम नेकों की क़द्र करते हैं।"

मेहता कमबख्त कहाँ माननेवाला था। बोला—"और भाई मेरे, ऐसी भी क्या जल्दी है? चलते हैं, बस थोड़ा रुको। हां तो याद रहे अशरफियां दूँगा मैं भी एक दिन नरगिस को।"

नरगिस मुस्करा रही थी। मुझे यों लगा जैसे पहाड़ी प्रदेशों और जंगलों में देखे हुए सौन्दर्य और प्रणय के दृश्य फिर से जीवित हो उठे हों। बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा—"यह जो गाना अभी गाया गया था, कौन सा राग था भला?"

तबलची ने कहा—"वह दीपक राग था, जी।"

हनीफ झुंझलाया—"दीपक? वह तो देस था देस। हम लोग बच्चे नहीं हैं, जी।"

नरगिस ने क्षमा-प्रार्थी निगाहों से हनीफ की ओर देखते हुए कहा—"जी देस ही तो था। हमारे तबला मास्टर ने तो यों ही कह दिया। हर वक्त पेट की आग याद रखते हैं ये लोग। देस भी इनको दीपक मालूम होता है। फिर सच तो यह है कि दीपक को देस बनाते कौन सी देर लगती है। इसे अशरफियां दिखाओ, अभी देस बन जायगा—ठंडा शीतल देस।"

हनीफ ने सुख का साँस लिया और बोला—"चलते रहें हमारे कारखाने!"

नरगिस ने एक और राग छेड़ दिया। हर क़दम पर मेहता नरगिस की दाद देता जाता था। शुक्रिया के लिए नरगिस का हाथ हर बार रेल के गार्ड की झंडी की तरह उठ जाता था। मेहता की वाह-वाह से एकस्वर हो कर हनीफ अपने मजदूरों को डाँट रहा था—अच्छी पल्प तैयार करो, हरामजादो। कारखाना है कारखाना—काग़ज का कारखाना। तुम्हारे अब्बा का मकान नहीं है! और नरगिस मानो इस कारखाने की आवाज पर भी झंडी हिला देती थी।

युद्ध के कारण का काग़ज भाव बहुत चढ़ गया था। जिस भाव पर चोर बाज़ार में मिल का काग़ज बिक रहा था, लगभग उसी भाव पर हनीफ की काग़ज फ़ैक्टरी का दस्ती काग़ज़ बिक जाता था जो देखने में एन्टीक पेपर का बाप मालूम होता था। इसका कारण काग़ज़ का आसानी से प्राप्त न होना ही था, नहीं तो युद्ध से पहले तो दस्ती काग़ज़ फ़ैक्टरी खोलने का ख़याल निरा घाटे का सौदा समझा जाता था। कहाँ साइकोलोजी का एम. ए. और कहां दस्ती काग़ज़ फ़ैक्टरी का मालिक। हनीफ के विचित्र

जीवन पर ध्यान देने की तो मुझे आवश्यकता नहीं थी। वह कह रहा था—"सुबह नौ बजे तो हमारी गाड़ी चल ही देगी ....लाहौर अच्छा है........ये राग भी अच्छे हैं और चलते रहें हमारे कारख़ाने भी !"

नरगिस ने अपने नये ग्राहक को बरमाने के लिए पान की तश्तरी पेश की। हनीफ़ घबरा गया—"इतनी चीज़ें, बाई जी।"

छालिया के कुछ बारीक टुकड़े उठा कर मुंह में डालते हुए हनीफ़ ने झट दूसरा हाथ जेब में डाल लिया। शायद उसे बचपन का वह सबक़ याद आ गया था—इस हाथ लो, उस हाथ दो। इस पर मेहता ने फ़िक़रा कसा—"जब हम अपनी शिक्षा समाप्त कर चुकते हैं तो कभी-कभी लौट जाना होता है उन्हीं दूसरी, तीसरी और चौथी कक्षाओं में।"

हनीफ़ ने तीन नोट निकाले और नरगिस की तश्तरी में रखते हुए बोला—"ये दोनों मेरे दोस्त हैं, बाई जी ! जी, आप विश्वास करें। हम तीन हैं—ये नोट भी तीन हैं.........ये दोस्त मेरे और ये कारख़ाने मेरे। कौन बन्द कर सकता है जी उन्हें ? मैं तो चला ही जाऊँगा, ये आते रहेंगे।"

हमारी नज़रें नरगिस के लाल फ़र्श पर गड़ी जा रही थीं। कभी जी चाहता था कि नोट हम उठा लें और कभी जी में आता कि हनीफ़ को उठा कर दरीचे के बाहर दे मारें। पर हनीफ़ का मासूम चेहरा ऐसी किसी हरक़त की इजाज़त न देता था।

नरगिस अपनी जगह पर बैठ चुकी थी। मेरा मन जंगलों और पहाड़ी प्रदेशों की ओर घूम गया। पर नरगिस ने मेरे पथ पर मुस्कान ही मुस्कान बिखेर दी और मेरा क्षितिज बदलता चला गया।

तबलची कह रहा था—"हमेशा आते रहें ये नेक बन्दे। बनी रहे हमारी दाल-रोटी।"

हनीफ़ बोला—"कभी सिर्फ़ दाल-रोटी देनेवाले आ जाते हैं, कभी गोश्त-हलवा देनेवाले। और होते वे भी हमारे ही जैसे हैं जी। और हमारे कारखानों को वे भी बन्द नहीं कर सकते। जी बाई जी, मैं अचानक आ गया। और यह मन की तलैया भी कब तक सूखी रहेगी जी? दुनिया की हर चीज़ एक न एक दिन, मेरा मतलब है जी, गोया एक न एक दिन, यानी एक न एक दिन......चलो जाने दीजिये जी—कभी गोश्त-हलवा देनेवाले भी... ...जी बाई जी आपका उस्ताद कौन है जी?"

नरगिस ने अपने साज़िन्दों की तरफ़ इशारा किया और बोली—"जी ये सब मेरे उस्ताद हैं।"

हनीफ़ अपने प्रोफ़ेसरों के सम्बन्ध में सोचने लगा। डाक्टर मूंगा का दिलचस्प अन्दाज़, उनका वह लड़के-लड़कियों के सामने 'सेक्स' और सेक्स के विश्लेषण में सच्ची बात कहने से न चूकने की आदत उसके मन को गुदगुदाती रहती थी। ताश के बादशाह की सी उनकी मूछें उसके अचेतन मन पर अमिट रेखाएँ छोड़ जाती थीं। पर खाली क्लास रूम के लेक्चरों और मूछों से तो ज़िन्दगी की खलीज पर पुल न बाँधा जा सकता था।

नरगिस की गहरी हरी सलवार कमीज़ और वह देस का धीमा-धीमा अलाप। ये दोनों चीज़ें कुछ इतनी एकस्वर और अर्थ-पूर्ण नज़र आई कि हनीफ़ ने सोचा—नरगिस का राग तो डाक्टर मूंगा के पांच लेक्चरों पर भारी है।

मेहता कह रहा था—"दुनिया लहूलुहान हो रही है। खैर हो प्यारे हिन्दुस्तान की। जंग हमसे दूर है। लेकिन जंग से पहले अकाल आ गया। बंगाल भूखा है। गेहूँ मंहगा हो रहा है।"

मैंने कहा—"गेहूँ ही मंहगा हो रहा है या यह राग भी?"

हनीफ़ बोला—'जी क्या सिर्फ़ रोटी की भूख ही भूख है?

शाम को सिनेमाघर की खिड़की पर खड़े हो कर देखिये।
जी, मेरा मतलब है चार आनेवाली खिड़की पर। किस क़द्र भीड़ होती है। ये भूखे नहीं तो और क्या हैं ?"

मेहता बोला—"और यहाँ हम भी बैठे हैं !"

नरगिस मुस्करा रही थी। मेहता उसकी प्रशंसा-भरी निगाहों पर जान देता था। पर उसकी आँखों में इस समय कोई व्यंग लहरा रहा था। वह बोली—"यह आपका अपना घर है, मेहता साहब !"

मेहता कह उठा—"जी हाँ, यह हमारा अपना घर है। जभी तो हम बग़ैर दावत ही के चले आते हैं। कभी-कभी मैं सोचता हूँ, नरगिस, कि तुम्हारे संगीत के बिना मेरी ज़िन्दगी सचमुच उस सब्ज़ी की तरह होती जिसे पकाते समय पकाने वाली नमक डालना भूल गई हो !"

सारी महफ़िल में फिर एक सूक्ष्म-सा कहकहा गूंज उठा। हनीफ़ ने आगे बढ़कर कहा—"जो बाई जी, शुरू करो न कोई नमकीन-सी चीज़ !"

नरगिस ने गाना शुरू किया—

दोस्त ग़मख़्वारी में मेरी सई फ़रमायँगे क्या
ज़ख़्म के भरने तलक नाख़ून न बढ़ आयँगे क्या

मेहता चौंक उठा—"दोस्त ग़मख़्वारी में मेरी सई......तो हिन्दुस्तान को फिर कोई नोचने आयगा ? अभी तो पुराने ज़ख़्म भी नहीं भरने पाये। क्या ज़ख़्म ही ज़ख़्म लिखे हैं हिन्दुस्तान की क़िस्मत में ?"

हनीफ़ चुप बैठा था। मैंने कहा—"मेहता भाई, ग़ालिब को तुम समझे या वह हमारा गामा पहलवान। कहाँ इश्क कहाँ हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान कराहे न कराहे, ग़ालिब की आत्मा ज़रूर कराहती होगी।"

हनीफ से भी न रहा गया। बोला—"मेरा भी यही खयाल है जी।"

मेहता बोला—"लेकिन बरखुरदार, यह साइकोलोजी नहीं शायरी है। ग़ालिब की क़ब्र पर कोई चार ईंटें न लगवा सका, हालांकि 'दीवाने ग़ालिब' छाप-छाप कर बेचने वालों ने अपने महल खड़े कर लिये। मई हम ऐश कर रहे हैं जरूर, पर हिन्दुस्तान भूखा है।"

नरगिस ने एक और ग़ज़ल शुरू की। वागीश्वरी और ग़ालिब एक ही घाट पर उतर पड़े थे। नरगिस के गले में जन्म-जन्म का ग़म छलक रहा था। मालूम होता था कि रात लम्बी होती चली जायगी। मेहता कह रहा था—"गाये जा, नरगिस, गाये जा। मैं देखूंगा कि हिन्दुस्तान को कौन नोचता है।

हम तीनों हमसफ़रियों की ओर नरगिस ने स्वप्निल दृष्टि से देखा। सारंगी जिधर को मुड़ती, नरगिस उधर ही को हो लेती। तबला भी उधर ही को थाप देता। सच तो यह था कि सारंगी और तबला दोनों नरगिस की सुकुमार स्वर लहरी पर बिछ जाते थे।

नरगिस के बालों के लच्छे जैसे लम्बे होते जाते थे। कानों में गोलमोल बालियाँ और भी गोलमोल हो उठीं—गोलमोल और बड़ी-बड़ी भी! और उसकी आँखों में काजल की काली-काली रेखायें भी बोल सकती थीं।

मेहता ने कहा—"अच्छा नरगिस, तुम कभी चुगताई से तो मिली होगी?"

नरगिस बोली—"कौन चुगताई? एक नाशाद अकेली [illegible] है मेरे यहाँ। कभी कोई चुगताई भी आये [illegible] याद नहीं। कुछ ग़ालिब और इकबाल की ग़ज़लें य[illegible] लिए [illegible] मेरे हिन्दुस्तान आते हैं तो कोई न को[illegible] जाती हूँ।"

मैंने कहा—"एक कलाकार दूसरे कलाकार को न जाने, से बड़ी बदक़िस्मती और क्या होगी !"

हनीफ़ बोला—"जी, बदक़िस्मती ।"

मेहता कह रहा था—"आज ग़ालिब यहां होते तो सच ानो वे ज़रूर कह उठते कि शायर लिखता है—सिर्फ़ लिखता है। और फिर उसकी शायरी सौ साल की नींद सो जाती है—सौ साल की नींद। परी कहानी की शहज़ादी ही की तरह। फिर कोई गानेवाला कोई शहज़ादा उसे आ जगाता है एक दिन ।"

नरगिस मुस्करा रही थी। बोली—"तो यह चुग़ताई शायर कहाँ रहता है ?"

मेहता ने कहा—"चुग़ताई कोई शायर नहीं, नरगिस, वह तो कलाकार है। वह ग़ज़लें लिखता नहीं, खींचता है। जैसे कारख़ानों में ह्विस्की खींची जाती है। ग़ालिब के शेरों को चुग़ताई ने तस्वीरों में ढाल दिया है। तुम भी तो चुग़ताई की कोई तस्वीर मालूम होती हो नरगिस !"

नरगिस ने मुस्करा कर सारे वातावरण में नया रंग भर दिया। बोली—"अच्छा तो यह बात है ? चुग़ताई कलाकार। हाँ, उसकी कई चीजें मैंने भी देखी थीं एक बार !"

मेहता ने फिर कहा—"चुग़ताई की तस्वीरों की औरत तो तुम्हीं हो, नरगिस !"

नरगिस ने अंगड़ाई ली। बोली—"चुग़ताई कभी मेरे यहाँ नहीं आया। कभी हमारी मुलाक़ात नहीं हुई। मुझे देखे बिना कैसे उसने मेरा रूप उतार लिया ? मैं तो हैरान हूँ।"

हमने एक साथ घूम कर नरगिस की तरफ़ देखा। जैसे ह कह रहे हों—हम चुग़ताई के दोस्त हैं।

नरगिस बोली—"आप चुग़ताई से मिलें तो मेरी तरफ़

इतना अर्ज कर दें कि वह मेरे यहाँ जरूर तशरीफ़ लायें।"

अब नरगिस गा रही थी –

चाहे तो मोरा मन ले ले!

इसे तो सागर तरंग का नाम दिया जा सकता था। कुछ लहरें तो सागर तट से पहले ही खत्म हो जाती हैं और कुछ ऐसी भी थीं जो सागर तट से आ टकराती हैं।

यह गान खत्म होने पर मैंने पूछा—"तुम्हारी उम्र ?"

वह बोली—"यही कोई इक्कीस बरस।"

"और मेरी उम्र है अनगिनत सदियां।"

वह बोली—"हाय ! इतना बूढ़ा आदमी आज पहली बार मेरे बालाखाना पर आया है।"

मैंने कहा—"सच तो यह है नरगिस, कि तुम्हारी उम्र भी अनगिनत सदियाँ हैं। तुम हमेशा यह गाना गाती रही हो। लेकिन मन लेने वाले दूसरे खेलों में मगन हैं। तुम्हारी आवाज बेकार न जायगी और न चुगताई की तस्वीरें ही बेकार जायँगी जिन्हें वह अनगिनत सदियों से अंकित करता चला आ रहा है।"

नरगिस को सच न आता था। यह अनगिनत सदियों का किस्सा भी कितना थका देनेवाला अनुभव था।

हम अभी उठने न पाये थे, अलाव अभी बुझा न था कि चार व्यक्तियों की एक और भीड़ ने प्रवेश किया—तीन अफ़गान और एक कोई पंजाबी नवाबजादा।

नरगिस ने एक मुस्कान अपने नये ग्राहकों की ओर भी फेंका जैसे कह रही हो—भले आये, पैसेवालो। लेकिन रुपये की क़ीमत तो तीन आने भी नहीं रह गई। यहां मेरे गीत भी महँगे हो गये। हर चीज महँगी हो रही है। और फिर बहुत देर भी तो हो गई।

मेहता उसी तरह बैठा रहा। हनीफ़ बड़ी सहमी-सहमी निगाहों से इन नये आशिक़ों की ओर देख रहा था। पंजाबी नवाबज़ादा नरगिस की उंगली थाम कर उसे परे सहन में ले गया और देर तक न जाने क्या-क्या बातें करता रहा। मुझे अपनी संगीत-प्रियता एक बहुत बड़ी भूख के रूप में नज़र आने लगी—अनगिनत सदियों की भूख। मेहता की अजब हालत थी। उसे पंजाबी नवाबज़ादे के विरुद्ध बहुत भयानक ग़ुस्सा आ रहा था। हरामी! मेरी मजलिस से नरगिस को उठा ले गया। न किसी शायर की परवाह और न किसी कलाकार की परवाह। और नरगिस को देखो। न तबला और न सारंगी की कुछ लाज आई, न पुराने ग्राहकों की इज़्ज़त ही उसकी राह रोक सकी।

नरगिस जा चुकी थी। पर उस्ताद जी की आँखों में अलाव को फिर से जला देने का ख्याल बाक़ी था। और तबलची भी यों बैठा था कि अभी हुक्म हुआ चाहता है और फिर भूखे कुत्ते की तरह ख़रगोश के पीछे भाग निकलेगा। हम तीनों टटपूंजिये नरगिस की वापसी का इन्तज़ार कर रहे थे। इतने में नीचे से सीटी की आवाज़ आई। नवाबज़ादा को आँगन ही में छोड़ कर नरगिस भागी-भागी आई। बोली—"अच्छा जी, आदाबर्ज़ है। सीटी बज रही है। एक बज चुका। अब और ज़्यादा हुक्म नहीं फिरंगी का।"

मौकाशनासी ज़रूरी थी। हम खुशी-खुशी नरगिस से विदा हुए और नीचे चले आये।

सड़क पर सीटी बजानेवाला सिपाही खड़ा था। वह कोई जादूगर मालूम होता था जिसकी एक ही फूँक ने गीतों के सब दीये बुझा दिये थे।

मेहता को बावर्दी लोगों से चिढ़ थी। उसने झुंझला कर कहा—"इन ज़ाते शरीफ़ को भी देख लो। किस इत्मीनान से

सड़क पर क़ाबिज़ हैं—बेजान खंभों की तरह।"

मैंने कहा—"इन लोगों को मत छेड़ो। यह खम्भा लिपट गया तो घर तक न छोड़ेगा।"

मेहता ने झुंझला कर कहा—"यह बेचारा मुझे क्या कहेगा? यह तो टकों का ग़ुलाम है। यह खुद ग़ुलाम, उसकी सीटी ग़ुलाम।"

सिपाही की निगाह सूने बालाखानों पर थी। पर उसके कान हमारी तरफ थे। उसने अपनी नज़रें मेहता के चेहरे पर गाड़ दीं और समीप आते हुए ज़हर में बुझे हुए व्यंग से कहा—"अभी आपका हम लोगों से पाला नहीं पड़ा। मैं जिस टहनी पर बैठ जाऊँ वह टहनी सूख जाय। कुछ ऐसी खासियत है मेरी। जिस घास पर फुंकार मारूं वह घास जल जाय। यों देखने को मैं अमन का अमानतदार हूँ।"

हमारे समीप एक नई कार खड़ी थी। वे तीनों अफ़गान अब इस कार के समीप पहुँच चुके थे। उनका साथी वह पंजाबी नवाबज़ादा भी आ गया और उसके पीछे-पीछे नरगिस भी चली आई थी। देखते-देखते ये सब लोग कार में घुस गये और कार नई दिल्ली की तरफ़ रवाना हो गई।

मेहता को यों महसूस हुआ कि चुग़ताई की सारी कला चोरी हो गई। हनीफ की गर्दन झुक गई थी। फिर मेहता ने संभल कर चुटकी ली—"ओ भाई मेरे, नरगिस का ख़याल छोड़ दो। वह इस जेलखाने में फिर काहे को आयगी। वह तो हिन्दुस्तान की रूह है, जो आज़ाद हो कर निकल भागी है।"

हनीफ़ को ग़ुस्सा आ गया—"मुझे भी आज़ादी चाहिये। लाहौर पहुँच कर मैं दस्ती काग़ज़ फैक्टरी में मन दिया तोड़ डालूँगा। आखिर मैं साइकौलौजी का एम० ए० हूँ और हमारे प्रोफेसर डाक्टर मूंगा को अब तक मेरी याद आती होगी। मैं

तो एक जहाज़ हूँ। किसी एक ही बन्दरगाह पर रुकना मेरा काम नहीं।"

मेहता कह रहा था—"मैं भी कल ही अपनी यह फ्रेंच-कट दाढ़ी कटवा डालूँगा क्योंकि मुझे याद है कि मेरे सपनों की रानी नरगिस ने एक बार कहा था—मैं तुम्हें कैसे प्यार करूँ मेहता? तुम तो पहचाने ही नहीं जाते।"

और स्वयं मुझे दूर-दूर के पहाड़ी प्रदेश और जंगल समीप आते दिखाई दे रहे थे। कई बुझे हुये दीये फिर से जगमगा उठे। किसी नज़र न आनेवाले हाथ ने टिमटिमाते दीयों की बत्तियों को फिर से उकसा दिया था। मेरे मन के कला-भवन में वह संथाल कुलवधू उसी तरह खड़ी थी। पलाश के लाल-लाल फूल उसे अभी तक नसीब नहीं हुए थे। समय उड़ा जाता है, उमरख़याम सच कहता था। और मेले को जाने वाले लोगों की देखा-देखी उस संथाल कुलवधू ने फूलों के बिना ही जूड़ा बाँधना शुरू कर दिया था।

सड़क पर अन्धकार गहरा होता गया, क्योंकि हर दरीचे से बत्तियाँ बुझती चली गईं। हनीफ़ बोला—"ग़ज़ब ख़ुदा का, आज ये रात के जुगनू भी अपनी ख़ुशी से नहीं टिमटिमा सकते।"

"अरे छोड़ो यार," मेहता ने बेबसी प्रकट करते हुए कहा, "हम भी तो जुगनू हैं। हमें कहाँ इतनी छूट है कि जब चाहें चमक सकें!"

अब पुल सामने था

उस समय वे शतरंज के मुहरे मालूम होते थे। उनमें एक मरहठा था, दो सिख, दो गोरखे, तीन बंगाली और आठ अहीर। सोलह के सोलह सिपाही दुश्मन की ताक में छिपे बैठे थे। अहीर प्यादे थे तो गोरखे फील, सिख घोड़े थे तो दोनों बंगाली बने-बनाये रुख। सुनील की हैसियत इस खेल में बादशाह की थी। उसकी जीत या हार पर इसकी विजय और पराजय का दारोमदार था। रात के अन्धकार में यह विचित्र खेल खेला जानेवाला था।

दूर मोर्चे पर तोपों की गर्ज ऊँची से ऊँची होती जा रही थी। पास के वृक्षों पर कोई पक्षी मौजूद न था जो वातावरण में एक हल्की-सी चीख छोड़ कर उड़ जाता।

मरहठा बोला—"रण पड़ रहा है।"

"यह क्यों नहीं कहता कि दुश्मन भाग रहा है," जैमल सिंह ने दाद दी।

"अब तो दुश्मन के बाप को भी भागना पड़ेगा," सूरमा सिंह कह उठा, "मुझे बस सुनील बाबू के इशारे का इन्तजार

सुनील की आँखों में नई चमक आ गई। जैमल सिंह और सूरमा सिंह समझ गये कि अब वह अपने आखिरी सिगरेट सुलगाने की फ़िक्र में है। वे अपनी-अपनी जगह से परे सरक गये। पूरे आध घण्टा से सुनील अपनी सिगरेट को जेब ही में टटोलता रहा था। बड़े सम्मान से उसने इसे बाहर निकाला और मरहठा ने दियासलाई जला कर इसे सुलगा दिया। तीन कश सुनील ने लगाये, एक कश मरहठा को भी नसीब हो गया। समझौते के अनुसार इसे बुझा कर उसी जेब में रख लिया जहाँ यह पहले पड़ी थी। दूर से दोनों गोरखे मुस्कराये। चलो किसी तरह तम्बाकू की बू तो नसीब हुई। आठों अहीर एक दूसरे की आँखों में झांकते रहे। शायद वे सुनील की सिगरेट छीनने का इरादा कर रहे थे।

दोनों बंगाली बहुत देर से ऊँघ रहे थे। उन्हें ऊँघते देख कर एक गोरखे को भी अपनी निद्रा हीनता का ध्यान आ गया। इशारे ही इशारे में सुनील की आज्ञा मिल गई और वह अपनी सीट से परे हट कर लेट गया। सिपाहियों की फ़ुसर-फ़ुसर से प्रत्यक्ष था कि उन्हें अपने तीनों साथियों से ईर्ष्या हो रही है। पर हर किसी को तो यों सोने की इजाज़त न मिल सकती थी। वह स्थान खतरे से खाली न था। हो सकता था कि उनकी नींद आखिरी नींद सिद्ध होती और दुश्मन की गोलियाँ उन्हें इस दड़बे में भून कर रख देतीं।

मरहठा बोला—"दोनों बंगाली तो सपने की पगडण्डी पर चलते-चलते अपनी-अपनी बंगालिन के पास पहुँच गये। अब यह गोरखा भी अपनी गोरखिन से मिलने के लिए चल पड़ा।"

चारों ओर से कहकहे बुलन्द हुए। पर सोनेवाले बराबर सोते रहे। जैमल सिंह, जो अब समीप आ गया था, सुनील के कन्धे पर हाथ रखते हुए बोला—"तुम मत जाना अपनी

बंगालन के पास। तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में हम उदास हो जायँगे"

"मुझ से यह भूल न होगी, सरदार जी!" सुनील ने जेब में बची हुई सिगरेट टटोलते हुए कहा।

सूरमा सिंह ने क़हक़हा लगाया और कहा—"तुम्हारी मर्ज़ी, सुनील बाबू! पर तुम्हारी जूँए तो तुम्हारी बंगालन ही निकाल सकती है।"

"पहले अपनी जूंओं का फ़िक्र करो, सरदार जी!" सुनील ने दायें हाथ से सिर खुजाते हुए कहा, "कल सूरज निकलने से पहले-पहले दुश्मन मजा चख लेगा। पुल पर हमारा क़ब्ज़ा हो जाने के बाद हम देखेंगे कि वह किस तरह मणिपुर का सपना देख सकता है।"

गोरखा मुस्करा रहा था। जैमल सिंह बोला—"क्यों तू भी सपने ही सपने में अपनी गोरखिन के मदमाते नयन देखने की बात सोच रहा है?"

सुनील ने घूर कर जैमल सिंह की ओर देखा—जैसे वह पूछ रहा हो—क्यों सरदार जी, तुम्हारा मन कब तक लाल शीशा बना रहेगा? यह तो तुम जानते ही हो कि सूरज के सामने सफ़ेद रोशनी के बाक़ी छः रंग पूरी तरह इसमें लीन हो जाते हैं। और यदि यह अपने शरीर में से किसी रंग को गुज़रने का रास्ता देता है तो वह सिर्फ़ लाल रंग ही को'। तुम्हारे लिए यह लाल रग है नारी की चर्चा। क्योंकि तुम इसी प्रसंग से अधिक घुले मिले नज़र आते हो।

मरहठा बोला—"वह नागा कन्या मुझे कभी न भूलेगी जिसने अपनी गाय को हाँक कर हमारे सामने खड़ा कर दिया था। हांलाकि हमें दूध के स्थान पर दुलत्तियाँ ही मिल सकी। उसकी आँखें कैसी चमक उठी थीं और किस तरह वह अचरज की ज़िन्दा तस्वीर बनी हमारे सामने खड़ी रही थी।"

सुनील ने मरहठा के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"हम नागा युवकों के ऋणी तो थे ही, उस कन्या ने भी अपने आतिथ्य से हमें मोह लिया। हाँलाकि हम उसकी गाय का दूध दोहने में सफल न हो सके।"

जैमल सिंह कह रहा था—"डीमापुर के कर्नल ने बताया था कि नागा लोग न अपनी गायों का दूध कभी दूहते हैं और न कभी दूध पीने का सपना देखते हैं। जिस गाय का दूध आज तक किसी ने न दूहा हो, उसका दूध हम कैसे दूह सकते थे?"

सूरमा सिंह ने गोरखा की ओर आँखें घुमाते हुए कहा—"उस कन्या की छातियाँ चट्टान की तरह उभरी हुई थीं। क्यों, गोरखा?"

गोरखा बोला—"मैंने सुना है कि जब तक नागा युवक अपनी प्रेयसी के पास किसी इन्सान का सिर काट कर नहीं ले जाता, वह उसे इस योग्य नहीं समझती कि वह उसके प्रेम का अधिकारी बन सके।"

मरहठा कह रहा था—"इस साल कोई नागा कन्या कुँवारी न रही होगी। नागा युवक खुश हो कर अपनी-अपनी प्रेयसी को मनुष्यों के सिरों की भेंट देते चले गये होंगे।"

जैमल सिंह ने पहले सुनील की ओर देखा। जैसे वह उसकी आज्ञा के बिना एक शब्द भी न निकालना चाहता हो। और फिर उसने महरठा की ओर आँखें घुमा कर कहा—"उस हीर का रांझा जरूर किसी जापानी लैफ्टिनैन्ट का सिर काट कर लाया होगा।"

अपने साथियों को जैमल सिंह ने हीर-रांझा का क़िस्सा सुना डाला। बाद को फिर से नागा कन्या की ओर घूमते हुए उसने वारिस शाह का एक बोल गा सुनाया—

झाक दे के बाच बहिश्त वाली

सानूं चल्लीए कल्लरीं छोड़, हीरे !

—बहिश्त के बाग की झलक दिखा कर, हे हीर, तू हमें इस बंजर धरती पर छोड़ कर विदा ले रही है।

उसने अपने साथियों को अच्छी तरह समझा दिया की इस नागा कन्या के माता-पिता ने हीर के माता-पिता के समान जबरदस्ती न की होगी, और नागा युवक को रांझा के समान निराश होने का अवसर न मिला होगा।

वृक्षों से छन कर धूप ने सामने की पगडंडी को कुछ इस तरह सजा दिया था कि मालूम होता था कोई कौड़ियाला सांप रेंगते-रेंगते रुक गया है। सुनील खुश था। उसे विश्वास था कि वह अपने साथियों की सहायता से दुश्मन पर छापा मारने में सफल हो जायगा। और फिर ज्यों ही वह पुल उनके क़ब्ज़े में आ जायगा, मणिपुर का आधे से ज्यादा संकट दूर हो जायगा। उनके साथी उसकी चाल सुनकर खुशी से उछल पड़े थे। इस पर उसके चार सप्ताह व्यतीत हुए थे। उसे यों लगा कि यह खुशी का अनुभव और स्टूडियो में बैठ कर चित्र अंकित करते समय का अनुभव एक जैसा है।

उसे बहुत पहले के दिन याद आ गये, जब उसके दोस्त उसे बेउस्ताद कह कर चिढ़ाया करते थे, उसकी रचनात्मक शक्ति, जो एक अजगर की-सी महीनों लम्बी निद्रा के बाद नये सिरे से अपने चतुर्दिक् का अवलोकन कर रही थी, मूर्तिकला और चित्रकला में नये प्रयोगों की समर्थक थी। वह डरता न था कि दूसरे कलाकार और मूर्तिकार क्या कहेंगे। वह चाहता तो शान्तिनिकेतन ही में टिका रहता। लेकिन वह चल पड़ा। घूम फिर कर उसने अजन्ता और ऐल्लोरा के कलाकारों की कला देखी। मूर्तिकला के पुराने उदाहरण उसे कला की नई-नई सीमायें पार करने पर उकसाते रहते। पैर का चक्कर उसे

स्थान-स्थान पर घुमाता रहा। यहाँ तक कि मणिपुर पहुँच कर उसने अपने मन को समझाया—बहुत देख ली दुनिया, बावरे! अब कुछ रोज यहीं जम जाओ और यदि संसार को देने के लिए तुम्हारे अन्दर कुछ है तो उसे बाहर निकालो।

मरहठा बोला—"क्या सोच रहे हो, सुनील बाबू? तुम आज्ञा दो तो एक ही फूँक से दुश्मन के दीये बुझा दूँ।"

सुनील का दिल जोश से उछला और वह बोला—"अवसर आने दो, मरहठा!"

एक बार फिर सुनील उसी स्मृतिधारा में बहा जा रहा था। उन दिनों सचमुच उसकी हालत एक गर्भवती की सी थी, जिसे सदा यह ध्यान रहता है कि वह दिन समीप आ रहा है, जब वह अपने कष्ट से संसार का परिचय करायगा यह मेरी कोख की उपज है—स्वयं अपने में एक पूरी पीढ़ी, और उसमें एक पूरी पीढ़ी की माँ बनने की शक्ति है। मणिपुरी नृत्य के चित्र अंकित करते समय उसे लगता कि प्राचीन हिन्दुस्तान नये हिन्दुस्तान को जन्म दे रहा है। एक बार स्वयं मणिपुर की राजकुमारी ने भी उसे अपने यहाँ खाने पर बुलाया था। रात का समय था। तारों की छाया में मणिपुरी कन्यायें नाच रही थीं। उसकी प्रार्थना पर स्वयं मणिपुर की राजकुमारी भी इस नृत्य में सम्मिलित हुई और उसे अनुभव हुआ था कि वह तो चित्रांगदा है, जिसने अपने अर्जुन से कहा था—तुम मुझसे ब्याह कर लो तो मैं कुछ ही दिनों में दूसरे अर्जुन को उसके सम्मुख खड़ा कर दूँगी। इसके पश्चात् उसने राजकुमारी की संगमरमर की मूर्त्ति तैयार की थी तो उसे रियासती क्षेत्रों में वह सन्मान प्राप्त हुआ कि जिस पर एक कलाकार का ही अधिकार हो सकता है, किसी और का नहीं। वह उसे बेचने पर राजी न हुआ। उसने साफ़ कह दिया था कि अगर राजकुमारी

चाहे तो वह उसे मुफ्त दे सकता है, पर किसी भी मूल्य पर इसे बेचना कला का अपमान होगा।

जैमल सिंह और सुरमा सिंह बैठे-बैठे अपने-अपने घर के सामने जा निकले थे, जहाँ उनके नन्हें-नन्हें बालक अपने हमजोलियों पर धूल की मुट्ठियाँ भर-भर कर फेंक रहे थे, जहाँ गीले उपलों के धुएँ की बू अधिक से अधिक तेज हो रही थी, जहाँ पायल के शर्मीले स्वर प्रेम और सौन्दर्य की अठखेलियों पर पच्चीकारी करते नजर आ रहे थे।

गोरखा बोला—"युद्ध समाप्त होते ही मैं नेपाल चला जाऊंगा।"

मरहठा कह रहा था—"दुश्मन की आधी से अधिक शक्ति को तो हम कल सुबह तक खत्म कर देंगे। अब वह युद्ध नया रुख इख्तियार करेगा। पर इस पुल पर हमारा कब्जा हो जाय जरा।"

जैमल सिंह और सूरमा सिंह एक साथ बोले—"सुनील बाबू को बहुत बड़ी उपाधि मिलेगी, गोरखा !"

गोरखा खुश था। वह कह रहा था—"मैं नेपाल जाऊँगा। तुम भी मेरे साथ चलना।"

मरहठा ने दाद दी—"कौन सरदार जी, जैमल सिंह या सूरमा सिंह ?"

"दोनों। और तुम भी, मरहठा !"

"मैं भी ? हाँ मैं नेपाल चलूँगा। कैसा है तुम्हारा नेपाल !"

"मणिपुर से अच्छा है नेपाल।"

"और महाराष्ट्र बुरा है मणिपुर से ?"

जैमल सिंह कह उठा—"वायदा रहा। मैं नेपाल चलूँगा, गोरखा !"

मरहठा बोला—"मैं कहता हूँ तुम तीनों महाराष्ट्र चलना।

बल्कि सुनील बाबू को भी ले चलेंगे। वहाँ बहुत दूध मिलता है।"

सुनील ने तटस्थ रूप से अपने साथियों की बातें सुनी। उसे मालूम था कि दूध मिल जाय तो यहीं नेपाल है, यहीं महाराष्ट्र है। उसे याद आया कि उसने मणिपुर की राजकुमारी की मूर्ति बनाते हुए एक दिन बड़े सम्मान से कहा था—राजकुमारी! तुम्हारी बातें तो ताजा दूध की धारें है। उनके विपरीत मेरी बातें कढ़े हुए दूध के समान हैं। जब दो तरह के दूध आपस में मिला दिए जायँ और अनुभवी हाथ जामुन की ठीक मात्रा डाल कर दही जमा दें तो कैसे पता चल सकता है कि इसमें कहाँ-कहाँ ताजे दूध ने मदद दी है। बल्कि मैं तो कहूँगा, कि यह अपनी मूर्ति भी तुम स्वयं तैयार कर रही हो, या यह कहो कि मेरी रचनात्मक शक्ति में तुमने ही इतनी रूह फूँकी है कि मैं मूर्तिकला का यह प्रयोग कर रहा हूँ! और इसके उत्तर में राजकुमारी केवल मुस्करा दी थी। उसने कला की जो सेवा की थी उस से उसके साथी एक दम अपरिचित थे। जब जैमल सिंह और सूरमा सिंह रंगीले गीत गाते, या जब अहीरों का नशीला विरह ऊँचा हो जाता, वह कई बार सोचता कि उन्हें बता दे कि उनके समीप एक कलाकार बैठा है। हालांकि आज उसके हाथ में बंदूक है, तूलिका नहीं, छेनी नहीं।

आकाश कुछ-कुछ धुंधला नजर आता था। तोपों की गरज बराबर सुनाई दे रही थी। ऊंची चट्टानें, जिनकी आड़ में ये लोग छिपे बैठे थे, गर्व से सिर उठाये खड़ीं थीं और सोनेवाले बराबर सो रहे थे।

आठों अहीर भी अब ऊँघते नजर आते थे। बड़े इतमीनान से सुनील ने अपने हाथों से एक-एक अहीर को लिटा दिया। यह उसकी स्नेह-भावना थी और सोनेवालों की संख्या तीन से बढ़ कर ग्यारह तक जा पहुँची थी।

फिर वही स्मृतिधारा बहने लगी। सुनील को अपने स्टूडियो का ध्यान आया जो उसने मणिपुर में स्थापित किया था। उसका उद्‌घाटन करते हुये राजकुमारी ने उसे कितना बड़ा सम्मान दिया था—'सुनील की चित्रकला ने मणिपुरी नृत्य को सदा के लिए जीवित कर दिया है। यह स्टूडियो अजन्ता और एल्लोरा के समान ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त करेगा। कम से कम मुझे तो विश्वास है कि कई वर्ष तक वह कला की सेवा में मग्न रहा है।' राजकुमारी बराबर उसे अपने संरक्षण से चिर-ऋणी बनाती रही। कई बार वह उसे रोकता। पर वह कहती—यह स्टूडियो नहीं मन्दिर है! फिर युद्ध के बादल घिर आये। यहाँ तक कि रंग मिलने भी कठिन हो गये। वह बराबर किसी न किसी तरह अपने पथ पर चलता रहा। बल्कि मूर्तिकला की ओर उसकी प्रतिभा अन्तिम गहराइयों को छू रही थी। इधर युद्ध ने जोर पकड़ लिया। दुश्मन के हवाई जहाज आते और बम बरसा कर जीवन के मुख पर मृत्यु की स्याही मल कर वापस चले जाते। उसे इतनी फुर्सत न थी कि दैनिक समाचार पत्र भी पढ़ता। अब कई बार राजकुमारी वीर सैनिकों की प्रशंसा आरम्भ कर देती। वह इस पर झुंझलाता। उसका ख्याल था कि राजकुमारी एक भावुक कन्या है। उसकी यह अतिरेकप्रियता उसे एक आँख भी न भाती थी। जिस रोज उसने राजकुमारी को बताया था कि उसके चारों भाई फौज में भरती हो गये हैं, राजकुमारी ने खूब जोर से ताली बजाई थी। जैसे वह कलकार का मजाक उड़ा रही हो। बैठे चाटते रहो कला को। दुश्मन जोर पकड़ गया तो वह हमें सिंघाड़ों की तरह भून कर खा जायगा।

उसने कई बार राजकुमारी को यह समझाने का प्रयत्न किया था कि सिपाही का काम कितना आसान है। तोप में गोला डाला और चला दिया। उसके सामने जो भी आया, झट मृत्यु और

विनाश के मुँह में चला गया। इसके विपरीत मैं एक सुन्दरी का चित्र बनाने में छः महीने तक व्यस्त रह सकता हूँ। मैंने मणिपुरी नृत्य देखा है। इसकी सुन्दरता को उभारा है। इसकी आत्मा को चमकाया है। ये ठीक है कि मेरे भाई अब बड़ी-बड़ी तनख्वाहों पर अब काम कर रहे हैं। मैं उनसे भिन्न हूँ। सिपाही बनने के लिये एक खास तरह का आदमी चाहिये। शक्ति और साहस उसके दो बड़े हथियार हैं। शारीरिक परिश्रम उसका आदर्श है, मानसिक परिश्रम नहीं। राजकुमारी सामने बैठी हँसती रही।

फिर एक रोज़ बम बरसाये गये। सुनील का स्टूडियो भी नष्ट हो गया। सौभाग्य से वह उस समय राजकुमारी के यहाँ दावत खा रहा था। इस दुर्घटना ने उसकी दुनिया बदल कर रख दी थी। वे सब महान् चित्र अब कहाँ थे जिनके द्वारा हिन्दुस्तानी कला को जीवित रखने का यत्न किया गया था? वह कह रहा था—भला मैंने इन लोगों का क्या बिगाड़ा था, राजकुमारी? मैंने तो आज तक बन्दूक भी हाथ में नहीं पकड़ी। मैं कितना निष्कपट हूँ, कितना सुन्दर। आज तक मैंने किसी पक्षी तक को घायल नहीं किया।

फिर एक रोज़ उसने फौज में नाम लिखा लिया। शुरू-शुरू में यह जीवन बहुत कठिन मालूम हुआ। पर उसे इससे एकस्वरता प्राप्त करते देर न लगी। ज्यों-ज्यों वह अधिक दिलचस्पी लेता गया, उसे मालूम हुआ कि वर्तमान युग का युद्ध भी एक कला है। उसे उस पत्र के शब्द याद थे जो उसने फौज से पहली बार राजकुमारी को लिखा था—'कलाकार सिपाही बनने के लिए प्रतिभा चाहिए। एक मूर्ख किसान या मज़दूर केवल सिपाही बन सकता है, कलाकार सिपाही नहीं। जैसे एक कलाकार तूलिका का प्रयोग करता है या मूर्तिकार छेनी चलाता है,

उसी तरह कलाकार सिपाही तलवार या बन्दूक का प्रयोग करता है, तोप और बम चलाता है। जैसे जनता असीम होती है और कलाकार इक्का-दुक्का, इसी तरह साधारण सिपाही जितने चाहो मिल जायँगे और कलाकार सिपाही मुश्किल से सौ में पाँच नज़र आयँगे। दुश्मन को धोखा देना, उसे नरग़ोह में डालना, थोड़े आदमियों की मदद से ज्यादा आदमियों को हराना, मौक़े पर पीछे हट जाना, एक ओर संकेत करके दूसरी ओर धावा बोल देना। बल्कि यह कहो कि युद्ध में पहुँचने से पहले ही नक्शे पर युद्ध जीत लेना। यह केवल एक कलाकार सिपाही का ही काम हो सकता है।' इसके उत्तर में राजकुमारी ने उसे लिखा था, 'तुमने मजेदार बातें लिखी हैं। पर अभी तक सिपाही बनने का उचित कारण तुम्हारी समझ में नहीं आया। आज मानवता संकट में है, कला संकट में है, सौंदर्य संकट में है और प्रेम भी संकट में है। आज कलाकार की परीक्षा हो रही है, मणिपुर, मणिपुरी नृत्य, मणिपुरी कन्याएँ, जिन्हें यह नृत्य थाली में मिला है—सब कुछ नष्ट हो जायगा। तुम हमारी मदद कर रहे हो। मैं तुम्हारी ऋणी हूँ।'

सुनील की बाहें अकड़ी हुई थीं। जैसे लोहे की छड़ों को भट्टी में लाल करने के बाद पानी में डाल कर एकदम बाहर निकाल लिया गया हो। अब लोहा पहले से सख्त हो गया था। केवल बाज़ू ही क्यों, उसका सारा शरीर लोहे का बन चुका था। उसे विश्वास था कि वह कला को नष्ट होने से बचा लेगा। सौंदर्य, प्रेम और नृत्य कभी खत्म न होंगे।

सोनेवालों के ख़र्राटे धौंकनी की तरह वातावरण को चीर रहे थे। गोरखा ने घृणापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। जैसे कह रहा हो—ये लोग दुश्मन पर क्या छापा मारेंगे! जिन हाथों से सुनील ने अहीरों को लिटाया था, उन्हीं हाथों से उस ने उन्हें जगा कर बिठा दिया। जैसे हिप्नोटिज्म की क्रिया खत्म होने पर

वे स्वयं उठ बैठे हों।

जैमल सिंह ने चुटकी ली—"क्यों यारो, हो आये अपनी-अपनी अहीरन के पास?"

सूरमा सिंह बोला—"अपनी अहीरनों के पास बेचारों ने खुद ही अपनी बहादुरी की तारीफ़ की होगी।"

गोरखा ने शह दी—"अहीरनों से पंजाबिनें ज़बरदस्त होती हैं।"

मरहठा ने बात का रुख बंगाल की ओर मोड़ दिया—"हुस्न बंगालन का और सब झूठ।"

सुनील की आँखों में अपना स्टूडियो घूम गया जहाँ उसने बंगाल के जीवन के कई दृश्य लटका रखे थे। हर कहीं बंगाली नारी पुरुष के साथ पग मिला कर चलती हुई दिखाई गई थी। जिसने सुनील की कला में नई आत्मा फूँकी थी वह थी मणिपुर की राजकुमारी। एक बार फिर उसे ख्याल आया कि साथियों को अपनी कहानी सुना डाले। पर वह चुप रहा।

जैमल सिंह कह रहा था—"काश! वह नागा लड़की अपनी गाय को हाँक कर फिर यहाँ ले आये। अबकी हम उसकी दुलत्तियां नहीं खायँगे।"

सूरमा सिंह ने बढ़ावा दिया—"पर गाय को दुहे जाते या हमें दूध पीते देख कर अब उसे अचरज न होगा।"

जैमल सिंह ने पलट कर कहा—"मेरी भूख तो उसकी चट्टान की तरह उभरी हुई छातियों को देख कर ही मिट जायगी।"

मरहठा ने विश्वास से सुनील की ओर आँखें घुमाईं और कहा—"तुम्हारा क्या ख्याल है सुनील बाबू? कल हम पिछली कसर निकालेंगे। खूब खायँगे, खूब सोयँगे।"

आठों अहीर हैरान थे कि सुनील ने उन्हें इतनी जल्दी क्यों जगा दिया। सोते रहते तो भूख और प्यास का दुःख भूला

रहता।

पगडंडी का रंग बदल चुका था। दोपहर का कौड़ियाला साँप अब कहीं नजर न आता था। पर दूर से तोपों की गरज बराबर सुनाई दे रही थी।

"यह कैसा जीवन है! न दूध मिलता है न पानी। तीन दिन की भूख प्यास," मरहठा कह रहा था, "यह ठीक है, सुनील बाबू, कि अब यह जीवन तुम्हारा है। क्योंकि उस रोज तुम हमें न बचाते तो दुश्मन की गोलियाँ हमारे सीनों में सुराख कर देतीं। पर मैं पूछता हूँ कि भूख प्यास से मर जाना भी कहाँ की बहादुरी है?"

बुझी हुई सिगरेट अब सुनील की हथेली पर पड़ी थी। मरहठा ने दियासिलाई जलाई और सुनील ने सिगरेट को ओठों में अटका लिया। जैमल सिंह और सूरमा सिंह काफी दूर बैठे थे। उन्होंने तीनों सोनेवालों को जगा दिया। क्योंकि तम्बाकू की बू ताजा दम होने का उपदेश दे रही थी। तीन कश सुनील ने लगाये। एक कश मरहठा को भी मिल गया। और फिर सुनील ने इसे बड़े इतमीनान से बुझा कर अपनी जेब में रख लिया।

"मेरे जी में तो आया था कि उस नागा लड़की का गरम-गरम चुम्बन ले लूँ," जैमल सिंह कह रहा था, "पर सुनील बाबू के डर से मैंने अपने मन को समझा लिया।"

"न समझाते तो पिटते," मरहठा बोला, "हमने तुम्हारी कुछ मदद न की होती। नागा लोग यह सहन नहीं कर सकते।"

"चुम्बनों से पेट नहीं भर सकता," सूरमा सिंह ने अपनी तान छेड़ दी, "भूखे को चाहिए दो रोटियाँ—दो चुम्बन नहीं।"

"उसकी गाय का दूध कितना मीठा था," जैमल सिंह ने झेंपते हुए कहा, "ऐसा दूध तो कभी पंजाब में भी नहीं पिया था।"

मरहठा कह रहा था—"औरत चाहे दुश्मन की हो, उसकी

रक्षा करो, शिवाजी महाराज भी यही कह गये हैं। और नागा लोगों ने तो हमारी बहुत सहायता की है।"

हाथी की तरह चिंघाड़नेवाली तोपें खामोश हो चुकी थीं। पक्षी अपने घोंसलों में लौट आये थे। साये गहरे हो रहे थे। सुनील ने अपने साथियों को तैयार होने का हुक्म दिया। वह सोच रहा था कि राजकुमारी कितनी खुश होगी जब उसे मालूम होगा कि इस युद्ध की सफलता का सेहरा मेरे ही सिर पर बँधा हुआ है। चलते-चलते उसने सिगरेट का बचा हुआ टुकड़ा सुलगाया। अब पुल सामने था।

सोना गाची

सड़क के किनारे एक स्त्री की लाश देख कर वह काँप उठी थी और अब उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। जैसे वह लाश अभी तक उसकी कल्पना में पड़ी सड़ रही हो। यह सड़ाँद अब बढ़ती ही जायगी। खत्म हुआ नयनों का जादू। अब यह जादू कभी जिन्दा नहीं होगा। नुक्कड़वाले मकान से हर रोज़ वह गाना गूँज उठता—'मैं क्या जानूँ क्या जादू है, इन दो मतवारे नयनन में।' उसे गानेवाले पर रह-रह कर क्रोध आने लगता। उस लाश ने भी नयनों के जादू का दावा किया होगा। ऊँह, नयनों का जादू।

वह चाहती थी कि उन सब छिनाल वेश्याओं को भी मौत समेट ले। न जाने वे कहाँ से यहाँ चली आई थीं। वे सब उसकी दुश्मन ही तो थीं। वह उन्हें जी भर कर गालियाँ दे चुकी थी। कोई दरवाज़ा, कोई खिड़की नये चेहरों से खाली नहीं। नर्क में जायँ ये सब चुड़ैलें। किसी की आई इन्हें आ जाय। क्या माताओं ने इन्हें वेश्या बनने के लिए ही जन्म दिया था।

अब तो हर कोई नये माल का खरीदार है। बिजली गिरे

नये माल पर और लानत उसके ग्राहकों पर। यह चाहत कैसी, सब फ़रेब है। इस शृंगार पर भगवान् का श्राप, यह सब पाप है। ये सब अप्सरायें हैं। ऊँह, अप्सरायें !

कल तक तो उसे आशा थी कि शायद अवस्था सुधर जायगी और वह भी चतुराई से कंघी-चोटी किया करेगी। पर आज सड़क के किनारे उस लाश को देख कर वह फैसला कर चुकी थी कि आँखों में काजल नहीं डालेगी, कजलौटी को उठा कर बाहर फेंक देगी। जैसे रात की रात में उसका यौवन मिट गया हो और अब वह किसी भी ग्राहक को अच्छी न लग सकती हो।

बाजार-भाव का उतार-चढ़ाव, जो अपने साथ मौत भी लिये आता था, उसे बिलकुल नापसन्द था। वह जली-भुनी बैठी थी। आज अगर भगवान् भी आ जायँ तो वह उसे भी खरी-खरी सुना देगी—'कलमुँहे, क्या यही है तेरा न्याय? चावल का भाव तो बढ़ता ही जायगा, पर मैं अपने दाम कहाँ तक बढ़ाये जाऊँ ?

यह भी क्या कोई जीवन है कि ग्राहक के इन्तज़ार में बैठे रहो। ग्राहक आता है और न जाने कहाँ रास्ते ही में फँसा लिया जाता है। मेरे दरवाज़े तक तो कोई उठाईगीरा भी नहीं पहुँचता। अजब मुसीबत है। अब कोई दलाल भी तो मदद नहीं करता। मेरे लिये अब हर आँख में घृणा-सी भर गई है। मुझे चिड़-चिड़ी बताते हैं। कमीने, रज़ील, दो कौड़ी के आदमी, गुण्डे ! क्या अब वे रंगरलियाँ वापस नहीं आ सकतीं? वह चाहती थी कि आज फिर मल-मल कर नहाये और सुनहरी किनारी वाली रेशमी साड़ी और नई अँगिया पहने। उसने आइने में अपना चेहरा देखा और धीमे-धीमे मुस्कराने का यत्न किया। फिर कुरसी की पीठ पर सिर टेक कर वह सामने सड़क की ओर देखने लगी।

सेवा में यह मेरा तुच्छ उपहार है, उसने कहा था, तेरे सुन्दर गले में यह माला हमेशा चमकती रहे मेरे प्रेम की तरह। और इसके उत्तर में उसने भी कहा था—तुम मेरे राजा हो, मेरे राजा! वह बीसियों बार उसके यहाँ आया और जेबें खाली करके चल दिया। वह लाख कहती—देखो मुझे कुछ नहीं चाहिये, मैं अपना प्रेम बेचना नहीं चाहती। पर वह कभी रुपये न उठाता। अब तो उसकी दी हुई चाँदमाला भी बिक चुकी थी। न बेचती तो चावल कहाँ से आता? उसका सिर झुक गया। मैंने प्रेम का अपमान किया है।

वह रईसजादा तो कोई कवि था। उसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कितनी ही कविताएँ याद थीं। बातें करते-करते वह किसी कविता का कोई टुकड़ा ज्यों का त्यों उठा कर रख देता था। उसके मुंह से निकले हुए बोल अभी तक उसके कानों में गूँज रहे थे।

वह कहता—'कोन सुरे आज बाँधिबे यन्त्र' अर्थात् आज किस गत पर साज मिलाओगी? और मैं यों ही हँसने लगती। वह फिर कहता—'तोमारेई जेनो भालोबाशिया छी शतो रूपे शतो बार' अर्थात् जैसे मैंने तुम्हें ही प्यार किया हो सौ-सौ रूप में, सौ-सौ बार! और मैं कहती—वाह रे मेरे चतुर प्रेमी। वह उसी अन्दाज में कहे जाता—'मनेर बेदना कांदे बेड़ाये बांशीर गाने' अर्थात् मन की वेदना बांसुरी के गान के साथ रोती-रोती भटकती फिरती है! और मैं कुछ ऐसे ही चुटकी बजाकर झट मुंह फेर लेती। वह मेरी नाक को प्यार से झंझोड़ता हुआ कह उठता—'कैमोने बांधिया गैलो नयने नयन' अर्थात् किस तरह नयनों में नयन बंध गये। और वह बताता कि ये केवल सोनार बांगला ही का सौभाग्य है कि यहाँ कन्याओं की संख्या दूसरे प्रान्तों से कहीं अधिक है। हाँ, वह 'अधिक'

पर जोर देकर कहता—यह कुछ इसी तरह है जैसे बंगला भाषा में दूध और शहद की मिठास दूसरी भाषाओं की अपेक्षा बहुत अधिक है। मेरे राजा, तुम अपनी 'रानी' के लिए बड़े से बड़ा त्याग कर सकते थे।

आइने के सामने बैठे-बैठे वह गाल सहलाने लगी। जैसे अपने राजा के ओठों के निशान तलाश कर रही हो, हट कर बैठो शरीफों की तरह—मैं मुस्करा कर कहती और वह झट कह उठता—हिमानी, किसी गत में भी आज जादू नजर नहीं आता। मेरे रूठे राजा, यदि तुम एक बार फिर इधर आ निकलो तो मेरा जादू फिर जाग उठे।

और आज इस दरवाजे के सामने केवल मछुआ-बाजार के निवासी ही गुजरते हैं। मेरा बस चले तो उन्हें उधर आने से रोक दूँ। ये लोग इधर क्यों आते हैं? अजब लोग हैं ये भी। इस तरह इन्हें क्या मिल जाता होगा? केवल देखने से तो भूख नहीं मिट सकती। आज मैं दीया जलाऊँगी। उसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उस बंगला कविता का ध्यान आया जिसमें अस्त होने से पूर्व सूर्य कहता है—कौन है जो मेरे पश्चात् मेरा कार्य करेगा? माटी का दीया धीमे स्वर में कह उठता है—मैं यत्न करूंगा। और मैं भी दीये के प्रकाश में आँखें झुका कर बैठूंगी कल की दुलहन की तरह। शायद मेरा राजा भी आ जाय। इस विचार से उसके मस्तिष्क में मधु-मक्खियां भिनभिनाने लगीं। एक सहानुभूतिपूर्ण कल्पना, एक नशा, एक विश्वास—यह था उसका दृष्टिकोण। यों तो हर ग्राहक उसका राजा था। कुछ ही क्षणों में वह उसकी रानी बन जाती और फिर जैसे सहसा अपनी प्रजा की चिन्ता में खो जाती—इस धरती ने तो कई उतार-चढ़ाव देखे हैं, राजाजी! क्यों मैं कुछ झूठ बोलती हूँ? सब को पेट भर भात क्यों नहीं मिलता राजा जी! और

ग्राहक हैरान रह जाता कि यह स्त्री इस सौन्दर्यशाला से भाग क्यों नहीं जाती।

थकी-हारी, उदास, निढाल—वह एक बत्तख़ की तरह सिमटी-सिमटाई बैठी थी। आज वह सबसे नाराज़ थी, अपने आप से भी। कोई लाख कहे कि जोत से जोत जलती है और सदा यही होता आया है। पर मैं आज दीया नहीं जलाऊंगी। हाँ, आज जोत नहीं जलेगी। ऊँह ! मैं कब तक दीये जलाती जाऊं—प्रकाशहीन दीये।

फिर उसे पिटारी में सम्हाल कर रखे हुए चावल का ध्यान आया और वह सोचने लगी—व्यर्थ ही आधे पेट खाती रही हूँ। कितने मंहगे दामों यह चावल प्राप्त किया। वह चाँदमाला भी, जिसके बदले में यह चावल खरीदा, मृत्यु को आने से तो नहीं रोक सकती थी। मृत्यु तो आये बिना नहीं रह सकती, फिर यह चावल तो व्यर्थ पड़ा रहेगा। काश ! मैंने वह चाँदमाला संभाल कर रखी होती और जब मृत्यु आ कर मेरी आँखों पर हाथ रखने लगती तो मेरे गले में वह माला चमक रही होती और उसकी दमक मृत्यु की आँखों को चौंधिया देती और शायद वह लौट भी जाती। चावल के कुछ दानों के कारण मैंने वह माला बेच डाली। मैंने अपने राजा का कितना अपमान किया।

सहसा उसकी आँखें उस दीवार की ओर उठ गईं जहाँ ताजमहल की तस्वीर लटक रही थी। वह विचार-प्रवाह में बह गई जैसे उसकी कल्पना में वह संगमरमर का बना स्मारक उभरता चला गया। एक ओर यमुना बह रही है। तीन ओर उद्यान का प्यारा-प्यारा दृश्य है। दूधिया चाँदनी छिटकी हुई है। और फिर जैसे उसे शाहजहाँ की बातें भी सुनाई देने लगीं—मुमताज़ ! अगर मैं शायर होता तो तुम्हें अपने गीतों में जिन्दा रखता। लेकिन मैं तो शायर नहीं हूँ। मैंने ताजमहल बनवाया। मैं यही कर सकता

था। कई सालों में यह मुकम्मल हुआ। कई हज़ार आदमी हर रोज़ काम करते रहे। मैं हर रोज़ यहाँ पहुँच कर निगरानी किया करता, और जब यह ऊँचा उठने लगा तो मैं हर रोज़ लाल किले के एक बुर्ज पर चढ़ कर एक बार इसे जरूर देखता। मुमताज, तुम सच जानो। ताज के सामने इन्सान का सिर झुक जाता है। और फिर जैसे तस्वीर बदल गई हो। शाहजहाँ का चेहरा मंद पड़ने लगा और उसकी जगह उसके अपने राजा का चेहरा उभर आया। वह हैरान रह गई कि मुमताज की जगह तो वह स्वयं प्यार की बातें सुन रही थी। अब मानो उसे साफ़ सुनाई देने लगा—हिमानी, तुम समझ लो कि ताज सौन्दर्य के चरणों में प्रेम का एक अकिंचन उपहार है। एक पुरुष ने एक स्त्री से प्रेम किया और तरल चाँदनी में ढाला हुआ यह संगमरमर का स्वप्न उसकी अमर स्मृति है जो मैंने तुम्हें सौंप दी। फिर जैसे राजा गुनगुनाने लगा—

एक बिन्दु नयनेर जल
कालेर कपोल तले शुभ्र समुज्ज्वल
ए ताज महल

अर्थात् आँख का एक आँसू ही तो है, काल के कपोल पर पड़ा हुआ शुभ्र, समुज्ज्वल—यह ताज महल। वह उसे समझा रहा था—हाँ हाँ, हिमानी, यह मेरी अपनी आँख से एक आँसू टपक पड़ा। और काल के कपोल पर संगमरमर की सर्वोत्कृष्ट कृति में परिवर्तित हो गया।

वह अर्द्धजागृति के इन स्वप्नों से चौंक पड़ी। इन स्वप्नों से अब क्या लाभ ? उसने सोचा कि उठ कर भात पकाये और आज अन्तिम बार पेट भर भोजन करके सो जाय। वह चाहती थी कि आज एक-एक उमंग को भोर के दीये के समान बुझा डाले। अब तो यहाँ चमगादड़ें ही डेरा डालेंगी, मकड़ियाँ ही जाले

चुनेंगी। फिर उसके मस्तिष्क में यह विचार चुटकियाँ लेने लगा कि उसने अपने राजा की वह चाँदमाला क्यों बेची। असल में वह उसे गिरवी रखने के लिए सुनार की दुकान पर गई थी। पर सुनार ने उसे ठग लिया। वह यही रट लगाता रहा था— तुम यही समझो कि गिरवी ही रखी गई है। पर अब तक तो उसने उसे पिघला डाला होगा। ऐसे पापी का कहीं भला न हो। बहुत सच्चा बना फिरता था। कलमुँहा! मेरे यौवन की निशानी और सौन्दर्य की रंगीन स्मृति को उसने किस निर्दयता से मटियामेट कर दिया होगा। सरकार भी अन्धी है। पर सरकार भी क्यों यह ठग-विद्या बन्द करे? उसे तो देश की रक्षा के लिये धन चाहिए। और कंगाल वेश्याएँ अपनी चाँदमालाएँ इसी तरह बेचती रहेंगीं।

एक बार फिर उसकी आँखें ताजमहल की तस्वीर की ओर उठ गईं। उसने सोचा कि ताज का निर्माण करनेवाला शाहजहाँ बहुत बड़ा बादशाह था। बादशाहों की बातें बादशाह जानें। वे तो यादगारें छोड़ने की फिक्र में रहते थे। अपनी जड़ों को मज़बूत करने के लिए न जाने वे कितने मज़दूरों की हड्डियाँ मिलाते। पर काल का हथौड़ा उन्हें स्थिर नहीं रहने देता। काश! मेरे दरवाज़े पर एक लाउड स्पीकर होता और मैं यह घोषणा कर सकती—आओ, कंगाल देश की वेश्याओ, हम आत्महत्या कर लें। इस बलिदान से बहुत लाभ होगा। रेंग-रेंग कर मरने से तो कहीं अच्छा है कि आदमी खुशी से विष-पान करले। जो विष-पान करना जानते हैं उन्हें ही अमृत-पान का भी अधिकार है। पर मैं यह कैसी उल्टी-सीधी बातें सोच रही हूँ? आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। मेरी मृत्यु पर सब वेश्याएँ कहकहे लगायेंगी और अपने ग्राहकों को कायर हिमानी की कथा बड़े घृणापूर्ण शब्दों में सुनाया करेंगी।

मुझे यह सब स्वीकार है। मुझे किसी की परवाह नहीं।

फिर पासवाले मकान से खाँसने की आवाजें सुन कर उसे क्रोध आने लगा। ऊँह! यह रजनी भी कैसी भगतिन बनी फिरती है। मन्दिर जाती है, आरती उतारती है और समझती है कि भगवान् खुश हो गये। मैं कहती हूँ कि रजनी को तपेदिक हो गया है। चुड़ैल! उसकी सब चाँदी धरी की धरी रह जाय! ये कैसी स्त्रियाँ हैं! इनका जीवन किस कद्र घिनौना है—यह मुलम्मा किया हुआ जीवन! ऊँह! उस दिन मुझ से कह रही थी कि उसे फौजियों को रिझाने के कई गुर आते हैं। जब वे उसे नोट देने लगते हैं तो कभी स्वीकार नहीं करती। कहती है—साहब लोग, अम रुपे के रुपये लेगा। वे पहले तो बिगड़ते हैं। फिर नोटों के बदले रुपये तलाश करके लाते हैं। वह उनसे ढाके की बंगला में चुपड़ी-चुपड़ी बातें करती है। वे कुछ नहीं समझते और उसका रौब जम जाता है। वे हमेशा उसी के पास आते हैं। फिर वह कुछ रटे-रटाये अँगरेजी वाक्य भी शुरू कर देती है—यस डार्लिंग, स्वीट डार्लिंग—कम, सिट, स्टैन्ड माई डार्लिंग फौजी हँस-हँस कर लोट-पोट हो जाते हैं। चुड़ैल अब खाँस रही है, खाँसती चली जा रही है। मैं कहती हूँ उसे तपेदिक हो चुका है।

और वह छिनाल मालती? उसके यहाँ तो सदा एक हुल्लड़-सा मचा रहता है। उसका सब कारोबार दलालों के सहारे चलता है। जो मछली किसी काँटे में न फँसे, उसे वह निर्मल का बच्चा एक मिनट में फँसा लाता है। और ज्यों ही ग्राहक बात शुरू करता है, मालती हँसी की फुलझड़ी बन जाती है। कहती है—एक बार फँसा हुआ शिकार बच कर कहाँ जायगा। मेरा बस चले तो मालती को यहाँसे निकलवा दूँ। बड़ी आई है शिकारिन! मैं कहती हूँ उसे वह आग लगानेवाली बीमारी

लग चुकी है और अब तो वह अपने ग्राहकों को भी वही बीमारी बाँट रही है।

और ने जो नुक्कड़ वाले मकान में सात कन्याएँ बाहर से लाई गई हैं--अभी तो वे अनजान हैं। दिन भर कुदक्के लगाती फिरती हैं। ज़रा भी तो नहीं थकतीं। प्रत्येक की पायल में कोई न कोई सोरठ गूंज उठता है। शेफाली उनकी मालकिन कहती है कि ये सात कन्याएँ उसकी सात फ़सलें हैं। बहुत सस्ते दामों खरीदा है उन्हें। जब चाँदनी में बालकोनी पर उन्हें देखती हूँ तो जी चाहता है कि उनकी बलाएं ले कर कहूँ—चाँदनी, तेरे जादू से सांवले चेहरे भी गोरे चेहरों के मुँह आने लगते हैं। सातों कन्याएँ बहनों की तरह रहती हैं। तीन गोरी, चार साँवली। साँवली कन्याओं के कहकहों में एमन कल्याण के स्वर उभरते हैं तो गोरी कन्याओं के कहकहों में खयाल दरबारी विलम्बित रंग भरता है। जैसे वे कह रही हों—हमारा भाग्य एक, हमारा उपाय एक। शेफाली कहती है—जो कन्याएँ वेश्याएँ बनती हैं, वे सचमुच वेश्याएं बनने के योग्य ही होती हैं। जब सुनो, यही कहेगी—अब ये सात मूर्तियाँ और आ गईं, चावल कहाँ से आये? चुड़ैल! जैसे ये कन्याएँ केवल खाती ही हों। उनकी कमाई से तो चाहे कोई सोने की दीवारें खड़ी कर ले। मेरा बस चले तो शेफाली को अन्धे कुएँ में धकेल दूँ। कहते हैं गुलामों का व्यापार बन्द हो गया। बकते हैं सब!

उसके शरीर के पट्ठे फड़कने लगे। रगों में रक्त की गति तेज़ हो गई। वह यह समझने में असमर्थ थी कि असल में अकाल को लानेवाले कौन हैं। यदि वह यह समझ पाती तो जितनी गालियाँ उसे याद थीं सब की सब उन्हीं पर उगल देती।

गली में साये फैलने शुरू हो गये थे। वह उठ कर चबूतरे पर खड़ी हो गई। उसकी आँखें नुक्कड़वाली बालकोनी

की तरफ उठ गईं। काश! वे सातों कन्याएँ उस समय खड़ी मुस्करा रही होतीं।

लोग क्यों कर सात-सात दिन भूखे रह जाते हैं? वह सोचने लगी कि जा कर चूल्हा सुलगाये। चावल तो काफी पड़ा है। ख्वाम-ख्वाह इतने दिन आधे-पेट खाती रही हूँ। आज पेट भर भी खा लूँ तो क्या हर्ज है? कल तो कोई दूसरी वेश्या यहाँ आ कर रहेगी और उसे कभी ख़याल भी नहीं आयगा कि यहाँ कोई हिमानी रहती थी।

अचानक वह चौंक पड़ी।

एक पूरा परिवार उसके दरवाजे पर खड़ा था—एक बुड्ढा, एक बुढ़िया और दो मरियल-सी युवतियाँ।

बुड्ढे ने हाथ फैलाते हुए कहा—"रानी माँ, हम भूखे हैं।"

बुढ़िया ने आँचल पसारते हुए कहा—"रानी माँ, हमें चावल दो।"

और फिर मरियल युवतियाँ कह उठीं—"चावल के बग़ैर हम लोग मर जायँगे।"

वह चाहती थी कि इन लोगों को धत्कार दे और कहे—तुम लोग मरने से क्यों डरते हो, जब कि मरने से अच्छी कोई दवा नहीं?

फिर उसकी निगाहें नुक्कड़वाली बालकोनी की ओर उठ गईं और उसकी कल्पना में सातों फसलें लहलहाने लगीं।

उधर से निगाहें हटा कर उसने अपने सामने खड़ी हुई मरियल युवतियों की ओर देखा। उनके चेहरों पर मौत के साये फैल रहे थे।

बुड्ढा बोला—"रानी माँ, हम पर दया करो—हम पर दया करो, रानी माँ! हम बहुत दिनों से भूखे हैं।"

बुढ़िया कह उठी—"रानी माँ, चावल!"

युवतियाँ चिल्लाईं—"चावल के बग़ैर हम मर जायँगे, रानी माँ !"

वह अपने हृदय और मस्तिष्क का सारा विष जमा करती हुई बोली—"यहाँ चावल कहाँ है ? यहाँ चावल कौन देगा—मुफ़्त चावल कौन दे सकता है ?"

बुड्ढे के चेहरे की टेढ़ी-मेढ़ी झुर्रियाँ और भी फैल गईं। उसकी निगाहों में अपनी कंगाल जन्मभूमि के लम्बे चौड़े मैदान फिर गये।

"चावल दो, रानी माँ !" युवतियों ने अपनी माँ के साथ घिघयाती हुई आवाज़ में कहा, "हम पर दया करो, रानी माँ !"

वह उनकी ओर देखती रही। उसके जी में आया कि बुड्ढे से कहे—जाओ फिर कभी इधर का रुख़ न करना, फिर कभी अपनी बेटियों को इधर मत लाना। पर न जाने किस विचार से वह अन्दर से दो मुट्ठी चावल ले आई और इन्हें बुढ़िया के आँचल पर बरसा दिया। वे लोग चावल ले कर भी वहीं खड़े रहे। हिमानी ने तेज़ नज़रों से उनकी ओर देखते हुए कहा—"अब तुम जाते क्यों नहीं ? और चावल चाहिएँ ? अब और चावल नहीं मिल सकता।"

उन लोगों के कदमों में गति पैदा हुई और वे उसे प्रणाम करके चलने लगे—आगे बुड्ढा और पीछे बुढ़िया, उसके पीछे मरियल युवतियाँ।

इतने में हिमानी चबूतरे से नीचे उतर आई और लपक कर युवतियों के कन्धों पर हाथ रखती हुई बोली—"चावल मुफ़्त नहीं मिल सकते, समझीं ! हाँ, इसी सोना गाची में तुम्हें भी मेरी तरह दीया जलाना होगा, जादू जगाना होगा इसी सोना गाची में।"